अगस्त्य संहिता

रामोपासना का प्राचीनतम आगमशास्त्र

सम्पादक

पं. भवनाथ झा

पत्राद्रुहिः प्रदेशेऽत्रुवन्ताकारं यथा लिखेत् सर्वदुष्टोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ७८ आयुरारोग्य
मैश्वर्यं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् सर्वान्कामानवाप्नोति विष्णुलोके स गच्छति ७९ इत्यगस्त्यसंहिता
यां परमरहस्ये हनुमन्मंत्रयन्त्र श्रीरामकवचोद्धारकथनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।। ३२ श्लोकसंख्या २०००
लिष्यतं लाला सीताराम श्री चित्रकूटस्थाने श्रीरामजी रामघाट मंदाकिनी में सुरनीतटे संगमे ।।
पुस्तकं श्री श्री श्री श्री महंत आचार्य वल्लभद्रासजी की वैसाख वदि १२ संवत् १९०२ रामः रामः रामः

महावीर मन्दिर प्रकाशन

'अगस्त्य-संहिता' वैष्णवागम पांचरात्र साहित्य का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें रामोपासना का विस्तारपूर्वक शास्त्रीय विवेचन किया गया है। यद्यपि 1898 ई. में लखनऊ से देवनागरी लिपि में तथा 1909 ई. में कोलकाता से बंगला अनुवाद के साथ बंगला लिपि में इसका प्रकाशन हुआ है, किन्तु वर्तमान में यह ग्रन्थ सर्वथा अनुपलब्ध है।
सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय से प्राप्त अनेक पाण्डुलिपियों तथा अन्य अनेक आधार-ग्रन्थों का उपयोग करते हुए महावीर मन्दिर, पटना के प्रकाशन विभाग के द्वारा यह 'अगस्त्य-संहिता' हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित की जा रही है। इसके संपादक पण्डित भवनाथ झा महावीर मन्दिर प्रकाशन के प्रभारी हैं। पाण्डुलिपि विज्ञान के गम्भीर विद्वान् तथा मिथिलाक्षर एवं बंगला लिपि के ज्ञाता भवनाथ झा ने स्वयं पाण्डुलिपियों तथा आधार-ग्रन्थों का अवलोकन कर इसका सम्पादन किया है।
अवकाशप्राप्त आइ. पी. एस. अधिकारी, कुशल प्रशासक, इतिहास तथा संस्कृत के गम्भीर अध्येता विद्वान्, बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद् के प्रशासक तथा महावीर मन्दिर की न्यास समिति के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने इस पुस्तक का आमुख लिखकर इस प्रकाशन की उपयोगिता पर प्रकाश डाला है।

महावीर मन्दिर प्रकाशन माला का 25वाँ पुष्प

अगस्त्य-संहिता

रामोपासना का प्राचीनतम वैष्णवागमशास्त्रीय ग्रन्थ

सम्पादक

पं. भवनाथ झा

आमुख लेखन

आचार्य किशोर कुणाल

महावीर मन्दिर प्रकाशन

प्रकाशक :

महावीर-मन्दिर-प्रकाशन

पाणिनि परिसर, बुद्धमार्ग, पटना-800 001

प्रथम संस्करण

श्रीकृष्णजन्माष्टमी, संवत् 2066 (2009 ई0)

मूल्य : पेपरबैक – 50 रुपये

पुस्तकालय संस्करण– 200 रुपये

प्राप्तिस्थान :

धर्मग्रन्थ विक्रय केन्द्र,

महावीर मन्दिर, पटना

मुद्रक :

प्रकाश ऑफसेट, धरहरा कोठी, पटना

तदादितदभून्मुक्तिक्षेत्रं त्रैलोक्यपावनम्।
तत्र तिष्ठन्ति ये भक्त्या यावज्जीवं नियम्यते।।
मुक्तिभाजो भवन्त्येव सत्यं सत्यं न चान्यथा।।36।।

इसके बाद उस समय से तीनो लोकों में पवित्र वाराणसी 'मुक्तिक्षेत्र' हो गयी। वहाँ जो भक्तिपूर्वक वास करते और जीवन पर्यन्त नियम का पालन करते हैं, वे मुक्ति के भागी होते हैं। यह सत्य है, सत्य है; यह अविचल है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये मन्त्रराजमाहात्म्यं नाम सप्तमोध्यायः।

अथ अष्टमोऽध्यायः

कथं मन्त्रवरं चादौ केन भूमौ [1]. प्रतिष्ठितम्।
उपादिदेश कः [2] कस्मै तन्मे ब्रूहि तपोधन।।1।।

सुतीक्ष्ण ने पूछा– हे तपोधन अगस्त्य मुनि! किसने सबसे पहले इस पृथ्वी पर इस मन्त्रराज को प्रतिष्ठित किया। किसने किसे उपदेश किया, यह बतलाइए।

अगस्तिरुवाच

ब्रह्मा ददौ वसिष्ठाय स्वसुताय मनुं ततः।[3]
स वेदव्यासमुनये ददावित्थं गुरुक्रमात् [4]।।2।।

ब्रह्मा ने अपने पुत्र वसिष्ठ को यह मन्त्र दिया। इसके बाद गुरु परम्परा से वसिष्ठ ने वेदव्यास मुनि को दिया।

वेदव्यासमुखेनात्र मन्त्रो भूमौ प्रकाशितः।
वेदव्यासो महातेजाः शिष्येभ्यः समुपादिशत्।।3।।

वेदव्यास के मुख से यह मन्त्र पृथ्वी पर फैला। महान् तेजस्वी वेदव्यास ने अपने शिष्यों को इसका उपदेश किया था।

गुरुः शिष्यगुणानादौ[क1] शौनकायाब्रवीन्मुनिः।
स शौनकेन पृष्टः सन्नाह मन्त्रान्तराणि च।।4।।

गुरु मुनि वेदव्यास ने पहले शिष्य के गुणों का उपदेश देकर शौनक को इसका उपदेश किया। शौनक ने जब वेदव्यास से पूछा तब उन्होंने दूसरे मन्त्रों का भी उपदेश करते हुए कहा–

1. घ. भूमौ केन चादौ। 2. घ. तदादिदेशकः।3. घ. पुनः। 4. घ गुरुक्रमः। 5. घ. गुरुः शिष्यगणानादौ।

यन्त्रपूजाविधिमपि होमं तर्पणलक्षणम्।
पुरश्चरणसंख्यां च होमद्रव्यान्तराणि च।।5।।
जपस्थानानि सिद्धिं च यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा।
तदुक्तं सम्प्रयच्छामि यदि श्रोतुमिहेच्छसि।।6।।

"हे शौनक! यदि सुनना चाहो तो प्राचीन काल में ब्रह्मा ने जिस प्रकार बतलाया था उसी प्रकार यन्त्र-पूजा की विधि, होम, तर्पण, पुरश्चरण की संख्या, हवन-सामग्री, जप-स्थान और सिद्धि के विषय में मैं उपदेश करता हूँ।"

सुतीक्ष्ण उवाच

सतां सन्दर्शनं लोके तर्पयत्येव मङ्गलम्।
मन्दभाग्योऽप्यहं कस्मात् श्रोता कल्प्ये त्वयाधुना।।7।।
मुनिवर्याधुनैव त्वं यदुक्तं तत् प्रबोध मे।

सुतीक्ष्ण ने कहा– साधुओं का मंगलमय दर्शन ही तृप्ति प्रदान करता है। तब जब आप-जैसे वक्ता इस समय हैं, तो मैं श्रोता होकर कैसे मन्दभाग्य रहूँ? मैं भी आपसे सुनकर श्रोता बनना चाहता हूँ। हे मुनिश्रेष्ठ! ब्रह्माजी ने जो कुछ कहा, वह मुझे अभी सुनाइए।

अगस्तिरुवाच

देवतोपासकः शान्तो विषयेष्वपि निःस्पृहः।
अध्यात्मविद् ब्रह्मवादी वेदशास्त्रार्थकोविदः।।8।।
उद्धर्तुञ्चैव संहर्त्तुं समर्थो ब्राह्मणोत्तमः।
तन्त्रज्ञो यन्त्रमन्त्राणां धर्मवेत्ता रहस्यवित्।।9।।
पुरश्चरणकृत् सिद्धो मन्त्रसिद्धः प्रयोगवित्।
तपस्वी सत्यवादी च गृहस्थो गुरुरुच्यते।।10।।

अगस्त्य बोले– देवों के उपासक, शान्त चित्तवाले, सांसारिक विषयों से विरक्त, अध्यात्म को जाननेवाले, ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करनेवाले, वेद, शास्त्र आदि के ज्ञानी, उद्धार और संहार दोनों करने में समर्थ, ब्राह्मणश्रेष्ठ, तन्त्रज्ञ, यन्त्र एवं मन्त्र के ज्ञाता, धर्म और रहस्य के ज्ञाता, पुरश्चरण करनेवाले, सिद्धपुरुष, जिन्हें मन्त्र सिद्ध हों तथा जो प्रयोगों का ज्ञान रखते हों, तपस्वी और सत्यवादी गृहस्थ गुरु कहलाते हैं।

आस्तिको गुरुभक्तश्च जिज्ञासुः श्रद्धया सह।
कामक्रोधादिदुःखोत्थं वैराग्यं वनितादिषु।।11।।
सर्वात्मना तितीर्षुश्च भवाब्धेर्भवदुःखितः।
ब्राह्मणो धर्ममोक्षार्थी कामार्थं विगतस्पृहः।।12।।
किं वा धर्मार्थमोक्षार्थी निष्कामश्चाथवा द्विजः।
मनोवाक्कायधर्मैस्तु नित्यं शुश्रूषको गुरोः।।13।।

धर्म में आस्था रखनेवाले, गुरु के भक्त, श्रद्धा के साथ सीखने की इच्छा रखनेवाले, काम, क्रोध आदि से उत्पन्न दुःखों को देखते हुए स्त्रियों के प्रति वैराग्य रखनेवाले, सभी प्रकार से संसार को पार करने की इच्छा रखनेवाले, संसार के दुःखों से दुःखी, ब्राह्मण, धर्म और मोक्ष की इच्छा रखनेवाले, निष्काम शिष्य होते हैं। अथवा मन, वचन, कर्म, एवं धर्म से गुरु की नित्य सेवा करनेवाले, क्षत्रिय, एवं वैश्य शिष्य होते हैं।

स्ववर्णाश्रमधर्मोक्तकर्मनिष्ठः सदाशुचिः।
शुचिव्रततमाः शूद्राः धार्मिकाः द्विजसेवकाः।[1]।14।।

अपने वर्ण और आश्रम के लिए कथित धर्म के अनुसार कर्म करनेवाले, सदा पवित्र रहनेवाले, पवित्र नियमों का पालन करनेवाले द्विजों की सेवा करनेवाले, धार्मिक शूद्र शिष्य होते हैं।

स्त्रियः पतिव्रताश्चान्ये प्रतिलोमानुलोमजाः।
लोकाश्चाण्डालपर्यन्तं सर्व्वेऽप्यत्राधिकारिणः।।15।।

पतिव्रता स्त्रियाँ, चाहे वे प्रतिलोम विवाह से या अनुलोम विवाह से उत्पन्न हो, वे भी शिष्या हो सकतीं हैं। चाण्डाल पर्यन्त सभी व्यक्ति यहाँ अधिकारी हैं।

स्वजातिकर्मनिरताः[2] भक्त्या सर्वेश्वरस्य ये।
उपदेशक्रमस्तेषां तत्तज्ज्ञात्यनुसारतः।।16।।

अपनी जाति के कर्म में लगे हुए भक्तिपूर्वक जो सर्वेश्वर की आराधना करते हैं, उनके लिए उनकी जाति के अनुसार दीक्षा का क्रम निर्धारित है।

अलसाभिमानिनः[3] क्लिष्टा दाम्भिकाः कृपणास्तथा।
दरिद्राः रोगिणो दुष्टा[4] रागिणो भोगलालसाः।।17।।

---

1. घ. शुचिव्रततमाः शुद्धाः धार्मिकाः द्विजसत्तमाः।2. घ.स्वजातिधर्मनिरताः।
3. घ. अलसाः मलिनाः।4. घ. रुष्टाः।

असूयामत्सरग्रस्ताः शठाः परुषवादिनः।
अन्योपायार्जितधनाः परदाररताश्च ये।।18।।
विदुषां वैरिणश्चैव ह्यज्ञाः पण्डितमानिनः।
भ्रष्टव्रताश्च ये कष्टवृत्तयः पिशुनाः जनाः।।19।।
बद्धाशिनः[1] क्रूरचेष्टा दुरात्मानश्च निन्दकाः।[2]
एवमेवादयोऽप्यन्ये पापिष्ठाः पुरुषाधमाः।।20।।
अकृत्येभ्योऽनिवार्याश्च गुरुशिष्यासहिष्णवः।
एवंभूताः परित्याज्याः शिष्यत्वेनोपकल्पिताः।।21।।

आलसी, अभिमानी, कठोर हृदय वाले, घमण्डी, कृपण, दरिद्र, रोगी, दुष्ट विषयों में आसक्त तथा भोग करने की लालसा रखनेवाले, सन्देह और ईर्ष्या करनेवाले, धूर्त, कठोर वाणी बोलनेवाले, दूसरे तरीके से धन अर्जित करनेवाले, दूसरे की पत्नी में आसक्त, विद्वानों से शत्रुता रखनेवाले, मूर्ख, स्वयं को पण्डित माननेवाले, नियम से च्युत, कठोर कार्य करनेवाले, चुगली करने वाले, शरीर को बाँधकर अर्थात् सिला हुआ वस्त्र पहनकर खानेवाले, क्रूर व्यवहार करनेवाले, दुष्ट, दूसरे की निन्दा करनेवाले – ये सब और अन्य प्रकार के भी पापाचरण करनेवाले नीच पुरुष हैं। बुरे कार्य करने से मना करने पर भी नहीं रुकनेवाले और गुरु एवं उनके शिष्यों के प्रति असहिष्णु व्यक्ति जो शिष्य बनने के लिए परीक्ष्य हों, उनका परित्याग करना चाहिए।

यदि तेऽभ्युपकल्पेरन् देवताक्रोधसभाजनाः।
भवन्ति हि दरिद्रास्ते पुत्रदारविवर्जिताः।
नरकाश्चैव देहान्ते तिर्यक्षु भवन्ति ते।।22।।

यदि ऐसे व्यक्ति शिष्य बनते हैं तो वे शिष्य देवता के कोप के भागी, दरिद्र, सन्ततिविहीन होते हैं; मरणोपरान्त उन्हें नरक मिलता है तथा पुनर्जन्म लेकर पशु-पक्षी आदि तिर्यक् योनि में उत्पन्न होते हैं।

ये गुर्वाज्ञां न कुर्वन्ति पापिष्ठाः पुरुषाधमाः।
न तेषां नरकक्लेशनिस्तारो मुनिसत्तम।।23।।

हे मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! जो गुरु की आज्ञा नहीं मानते वे पापी पुरुषों में नीच हैं। उन्हें नरक के क्लेश से छुटकारा नहीं मिलता है।

1. घ. बद्धाशिनः। 2. घ. निन्दिताः

क्षुद्राः[1] प्रलोभितास्तैस्तैर्निन्दितेभ्यो दिशन्ति ये।[2]
विनश्यत्येव तत्सर्वं सैकते शालिबीजवत्।।24।।

क्षुद्र बुद्धि वाले, प्रलोभन के फेर में पड़कर जो जो निन्दित कार्य के लिए किसी को उकसाते हैं, उस गुरु का भी सबकुछ बालू की ढेर पर पड़े धान के बीज के समान नष्ट हो जाता है

यैः शिष्यैः शश्वदाराध्याः गुरवो ह्यवमानिताः।
पुत्रमित्रकलत्रादिसंपद्भ्यः प्रच्युता हि ते।।25।।

जो शिष्य बार बार अपने आराध्य गुरुओं का अपमान करते हैं, वे पुत्र, मित्र, पत्नी और धन सम्पत्ति से विहीन हो जाते हैं।

अधिक्षिप्य गुरून् मोहात् परुषं प्रवदन्ति ये।
शूकरत्वं भवत्येव तेषां जन्मशतेष्वपि।।26।।

गुरुओं पर आक्षेप लगाकर मूर्खतावश जो गुरु के प्रति कठोर वचन कहते हैं, वे सौ जन्मों तक सूअर होते हैं।

ये गुरुद्रोहिणो मूढ़ाः सततं पापकारिणः।
तेषां च यावत्सुकृतं दुःकृतं स्यान्न संशयः।।27।।

जो मूर्ख गुरु से द्रोह करते हुए हमेशा पापाचरण करते हैं उनके द्वारा किये गये अच्छे कार्य भी बुरे फल देते हैं।

तारादिर्मुक्तये लक्ष्मीबीजादिर्भुक्तये तथा।
वाक्सिद्धये च वाग्बीजं प्रणवान्ते विनिक्षिपेत्।।28।।

मोक्ष के लिए पंचाक्षर मन्त्र (रामाय नमः) में तार (ॐकार) लगाकर, सुख-सम्पत्ति के लिए लक्ष्मींबीज (श्रीं) लगाकर तथा वाणी की सिद्धि के लिए वाग्बीज(ऐं) लगाकर प्रणव ॐकार अन्त में जोड़कर जपना चाहिए।

मान्मथं सर्ववश्याय पदं तत् त्रितयं पुनः।
तारान्ते चैव रामादौ सर्वार्थं विनियोजयेत्।।29।।

सर्ववशीकरण के लिए कामबीज (क्लीं) लगाकर तथा सर्वकामना सिद्धि के लिए तीनों पदों ह्रीं, श्रीं, ऐं के बाद तार (ॐकार) लगाकर रामादि का जप करें।

---

1. घ. क्षुब्धाः।2. घ. निन्दितानादिशन्ति च।

रामाय नम इत्येव मन्त्रः पञ्चाक्षरो मनुः।
रामित्येकाक्षरो मन्त्रो राम इत्यपरो मनुः।।30।।

'रामाय नमः' यह एक मन्त्र पाँच अक्षरों का है, 'रां' यह एकाक्षर मन्त्र है तथा 'राम' यह एक अन्य मन्त्र है।

चन्द्रान्तश्चैव भद्रान्तः पुनर्द्वेधा विभज्यते।
स्वकामशक्तिवाग्लक्ष्मीताराद्यः पञ्चवर्णकः।।31।।
षडक्षरः षड्विधः स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदः।
पंचाशन्मातृकामन्त्रवर्णप्रत्येकपूर्वकः ।।32।।

'रामचन्द्राय नमः' और 'रामभद्राय नमः' इस प्रकार दो मन्त्र हो जाते हैं। स्वबीज (रां), कामबीज(क्लीं), शक्ति(ह्रीं), वाक्(ऐं), लक्ष्मी(श्रीं) तथा तार (ॐ) इन छह बीजों का आदि में प्रयोग करने से पंचाक्षर मन्त्र छह प्रकार के षडक्षर मन्त्र हो जाते हैं। जिनमें पचास मातृकावर्णों के बीजरूप प्रत्येक के आदि में जोड़कर जप किया जाता है।

लक्ष्मीवाङ्गन्मथादिश्च सर्वत्र प्रणवादिकः।
रामश्च चन्द्रभद्रान्तश्चतुर्थ्यन्तो हृदा[1] सह।।33।।
बहुधा विद्यते तारसहितोऽयं षडक्षरः।

लक्ष्मीबीज, वाक्बीज, कामबीज प्रारम्भ में लगाकर तथा प्रत्येक मन्त्र में तार जोड़कर 'राम' शब्द 'चन्द्र' और 'भद्र' जोड़कर चतुर्थी विभक्ति में 'नमः' के साथ तथा तारक बीज ॐकार के साथ अनेक प्रकार के यह षडक्षर मन्त्र होते हैं।

एकधा च द्विधा त्रेधा चतुर्धा पंचधा तथा।।34।।
षट्सप्तधाष्टधा चैव बहुधायं व्यवस्थितः।

एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर, चतुरक्षर, पंचाक्षर, षडक्षर, सप्ताक्षर, अष्टाक्षर एवं अनेकाक्षर, इन अनेक प्रकार के मन्त्रों का निरूपण किया गया है।

मन्त्रोऽयमुपदेष्टव्यो ब्राह्मणाद्यनुरूपतः।।35।।
संपूज्य विधिवत् तत्र संस्थाप्य कलशं नवम्।
तत्सामर्थ्यानुरूपेण मृत्सुवर्णमयं तथा।
दात्रा प्रदीयते यद्वन्मन्त्रो देयस्तथा मुने।।36।।

---

1. क. नमः।

हे मुनि सुतीक्ष्ण! ब्राह्मण आदि जाति के शिष्यों को उनके अनुरूप विधानपूर्वक पूजा कर सामर्थ्य के अनुसार सोने का या मिट्टी के नवीन कलश की स्थापना कर यह मन्त्र उसी प्रकार शिष्य को दें जैसे कोई दाता किसी को धन देता है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये गुरुशिष्यलक्षणं नामाष्टमोऽध्यायः।।8।।

अथ नवमोऽध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच

किं तन्मन्त्रं वद ब्रह्मन् स्वरूपन्तस्य चानघ।
कैर्मन्त्रैर्वा कथं कुत्र लेख्यः किं तेन वा भवेत्।।1।।

हे ब्रह्मन्! मुनि अगस्त्य! वह मन्त्र क्या है? इसका स्वरूप क्या है? किस मन्त्र से किस प्रकार और किस स्थान पर उपासना करनी चाहिए तथा अंकित करने योग्य यन्त्र कैसा है, यह सब हमें बतलायें।

सुतीक्ष्ण उवाच

किं तद्यन्त्रं वद ब्रह्मन् स्वरूपं चास्य चानघ।
कैर्मन्त्रैर्वा कथं कुत्र जाप्यं किं तेन वा भवेत्।।1।।

सुतीक्ष्ण बोले- हे मुनि अगस्त्य! वह यन्त्र क्या है, इसका स्वरूप क्या है और किन मन्त्रों से कैसे कहाँ जप करना चाहिए और उसका क्या फल मिलेगा?

अगस्त्य उवाच

मनोरथकराण्यत्र नियम्यन्ते तपोधन।
कामक्रोधादिदोषोत्थदीर्घदुःखनियन्त्रणात् ।[1]।2।।
यन्त्रमित्याहुरेतस्मिन् रामः प्रीणाति पूजितः।
यन्त्रं मन्त्रमयं प्राहुर्देवता मन्त्ररूपिणी।।3।।

अगस्त्य बोले- यहाँ में मनोरथ पूरा करनेवाले यन्त्रों की विधि बतलाता हूँ। काम, क्रोध आदि दोषों से उत्पन्न दुःखों को नियन्त्रित करने के कारण इसे यन्त्र कहा जाता है। इसपर पूजित श्रीराम प्रसन्न होते हैं। मन्त्र से युक्त यन्त्र होता है, जिसमे मन्त्र-स्वरूप देवता स्वयं होते हैं।

---

1. घ. कामक्रोधादिदोषोत्थदीर्घयन्त्रनियन्त्रणात्।

यन्त्रेणापूजितो रामः सहसा न प्रसीदति।
श्रीरामः पूजितो नित्यं सीतया सह यन्त्रितः।।4।।
यदिष्टं तत्करोत्येव तत्तन्मन्त्रवराद्दृते।

यन्त्र के विना पूजित राम शीघ्र प्रसन्न नहीं होते हैं। किन्तु श्री सीता के साथ यन्त्र पर निर्दिष्ट श्रीराम पूजित होकर उस मन्त्रराज के विना भी इष्ट सिद्धि करते हैं।

शरीरमिव जीवस्य रामस्य मनुरुच्यते।।5।।
यन्त्रे मन्त्रं समाराध्य यदभीष्टं तदाप्नुयात्।[1]
[2]यन्त्रे मन्त्रं समाराध्य प्रसादयति राघवम्।।6।।

जैसे जीव का आश्रय शरीर होता है, उसी प्रकार श्रीराम मन्त्र में विराजमान होते हैं। यन्त्र पर मन्त्र की आराधना करने से कामना की पूर्ति होती है तथा श्रीराम प्रसन्न होते हैं।

[3]सर्वेषामपि मन्त्राणां यन्त्रे पूजा प्रशस्यते।
यन्त्रस्वरूपं वक्ष्यामि ब्रह्मा प्राह यथा पुरा।।7।।

सभी मन्त्रों की पूजा यन्त्र पर प्रशस्त मानी जाती है। ब्रह्मा ने जिस प्रकार प्राचीन काल में कहा था वैसा ही मैं भी कहता हूँ।

आदौ षट्कोणमुद्धृत्य ततो वृत्तं लिखेन्मुने।
दलानि विलिखेदष्टौ ततः स्याच्चतुरस्रकम्।।8।।

सबसे पहले षट्कोण लिखकर तब वृत्त लिखना चाहिए। इसके बाद आठ दल लिखकर चतुरस्र (वर्ग) बनाना चाहिए।

सर्वलक्षणसम्पन्नं व्यक्तं सर्वमनोहरम्।
तदन्तरेऽपि सुव्यक्तं साध्याख्या कर्मगर्भितम्।।9।।

सभी लक्षणों से युक्त, स्पष्ट और सुन्दर यन्त्र लिखकर उसके मध्य में स्पष्ट अक्षरो में अभीष्ट वस्तु और कर्म लिखना चाहिए।

तद्बीजं विलिखेद् भूयस्तत् क्रोडीकृतमन्मथम्।
ततस्तु पञ्चबीजानि पुनरावर्तयेन्मुने।।10।।
पुनर्दशाक्षरेणैव तदेव परिवेष्टयेत्।

1. घ. समाप्नुयात्।2-3. घ. में अनुपलब्ध।

तब बीज मन्त्र के दोनों ओर कामबीज (क्लीं) लिखें। इसके बाद पाँचो बीजाक्षर फिर दुहराएँ। पुनः दशाक्षर मन्त्र से वेष्टित करें।

षडङ्गान्यग्निकोणादि कोणेष्ववक्रमाल्लिखेत्।।11।।
तथा कोणकपोलेषु ह्रीं श्रीं च विलिखेन्मुने।
हुं बीजं प्रतिकोणाग्रं केसराग्रेषु च स्वरान्।।12।।

फिर अग्निकोण से प्रारम्भ कर कोणों में विपरीत क्रम से षडङ्गों को लिखें और कोणों के दोनों ओर 'ह्रीं' और 'श्रीं' लिखें। प्रत्येक कोण के अग्रभाग में 'हुं' बीज लिखें और केसर के अग्रभागों में स्वरों को लिखें।

मालामन्त्रस्य वर्णाः स्युः चत्वारिंशच्च पञ्च च।
वर्णाः सप्तदलेष्वेव षट् षट् पञ्चाष्टमेदले।।13।।
पूर्वतो वेष्टयेत् काद्यैः तत्सर्वं च तपोधन।
बीजद्वयं च विलिखेत् नरसिंहवराहयोः।।14।।
दिग्विदिक्ष्वपि पूर्वस्मात्[1] भूगृहे चतुरस्रके।
यन्त्रेस्मिन् सम्यगाराध्य भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति।।15।।

मालामन्त्र में पैंतालीस वर्ण होते हैं, जिनमें सात दलों में छः छः वर्ण लिखें और आठवें में पाँच वर्ण लिखें। पूर्व से 'क' आदि से सबको वेष्टित करें और वराह एवं नरसिंह के बीज (क्ष्रौं) चारो दिशाओं एवं चारो कोणों में वर्गाकर भूपुर पर लिखें। इस यन्त्र पर आराधना कर भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है।

यद्वा मध्ये लिखेत्तारं षट्सु कोणेष्वपि क्रमात्।
मूलमन्त्राक्षराण्येव सन्धिष्वग्रं च मान्मथम्।।16।।
मायां गण्डेषु किंजल्के स्वराणां लेखने मतम्।
मन्त्रेषु पूर्ववन्मालामन्त्रो लेख्यः क्रमेण हि।।17।।
दशाक्षरेण संवेष्ट्य कादीनि व्यञ्जनानि च।
दिग्विदिक्षु लिखेद् बीजे नारसिंहवराहयोः।।18।।

अथवा मध्य में तथा छः कोणों में क्रम से तार (ऊँ कार) लिखें। इसके बाद मूल मन्त्र के अक्षर कोण की सन्धियों पर लिखकर उसके आगे कामबीज (क्लीं) लिखें। कोणों के दोनों बगल में तिरछी रेखा पर माया बीज (ह्रीं) तथा केसर पर

---

1. क. सर्वासु।

स्वर लिखें। पूर्व की तरह मालामन्त्र दलों पर लिखकर दशाक्षरी मन्त्र से संवेष्टित कर 'क' आदि व्यञ्जन लिखें तथा दिशा और उसके कोणों में नरसिंह (क्ष्रौं) और वराह के बीज (ह्लौं) लिखें।

एतद्यन्त्रान्तरं चात्र साङ्गावरणमर्चयेत्।
सौवर्णे राजते भूर्जे लिखित्वार्चनमाचरेत्।।19।।

इस यन्त्र अथवा दूसरे यन्त्र की पूजा अंगों एवं आवरण के साथ करें। इस यन्त्र को सोना, चांदी या भूर्जपत्र पर लिखकर पूजा प्रारम्भ करें।

हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा क्षौ हं विनिर्दिशेत्।
दशाक्षरो वराहस्य नृसिंहस्य मनुः स्मृतः।।20।।

"हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा क्षौं हं" यह नृसिंह और वराह का दशाक्षर मन्त्र है।

ह्रीं श्रीं क्लीं चोंन्नमो ब्रूयात् ततो भगवते पदम्।
रघुनन्दनायेति पदं [1] रक्षोघ्नविशदाय च।।21।।
मधुरेति प्रसन्नेति वदनाय पदं वदेत्।
विशेषणं पञ्चमं च ब्रूयादमिततेजसे।।22।।
ततो बलाय रामाय विष्णवे नम इत्यपि।

ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुरप्रसन्नवदनाय अमिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः।[2]

मालामन्त्र का स्वरूप- "ह्रीं श्रीं क्लीं ॐ नमः' बोलें। इसके बाद 'भगवते' यह शब्द बोलें। इसके बाद 'रघुनन्दनाय' यह शब्द, फिर 'रक्षाघ्नविशदाय' भी बोलें। तब 'मधुर' 'प्रसन्न' और 'वदनाय' बोलें। तब विशेष रूप से पाँचवाँ पद 'अमिततेजसे' यह बोलें। तब 'बलाय' 'रामाय' और 'विष्णवे नमः' यह भी बोलें। इस प्रकार मन्त्र का ऐसा स्वरूप होगा- ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुरप्रसन्नवदनाय अमिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः।

मालामन्त्रोऽयमुद्दिष्टो नृणां चिन्तामणिः स्मृतः।
ॐश्रीं सीतायै वह्निजाया तु सीतामन्त्र उदाहृतः।।23।।

1. घ. रघुनन्दनाय पदं ब्रूयाद्रक्षोघ्नविशदाय च। 2. घ. में अनुपलब्ध।

यह मालामन्त्र कहा जाता है जो साधकों के लिए 'चिन्तामणि के रूप में स्मरण किया जाता है।' ॐ श्रीं सीतायै' के साथ वह्निजाया (स्वाहा) लगाकर सीतामन्त्र है।

यन्त्रेऽस्मिन् राममाराध्य साङ्गावरणमादरात्।
आराध्य गुलिकीकृत्य[1] धारयेद्यन्त्रमन्वहम्।।24।।

इस यन्त्र पर आदरपूर्वक अंग-पूजा और आवरण-पूजा के साथ श्रीराम की आराधना कर इस यन्त्र को मोड़कर गोल बनाकर प्रतिदिन धारण करना चाहिए।

दारिद्र्यदुःखशमनं पुत्रपौत्रप्रदन्तथा।
ऐश्वर्यकृद् वश्यकरं शत्रुसंहारकारकम्।।25।।
विद्याप्रदं सौख्यकरं रोगशोकनिवारणम्।।26।।
पराभिचारकृत्येषु वज्रपञ्जरमुच्यते।
किं मन्त्रं बहुनोक्तेन सर्वसिद्धिप्रदं मुने।।27।।

यह यन्त्र दारिद्र्य और दुःख का शमन करता है; पुत्र और पौत्र प्रदान करनेवाला है, ऐश्वर्य देता है, सबको वश में ला देता है शत्रुओं का संहार करता है। यह विद्या देनेवाला, सुख देनेवाला, रोग और शोक को हटानेवाला है। दूसरे पर अभिचार कर्मों में 'वज्रपंजर' कहलाता है। अनेक बार मन्त्र जपने से क्या लाभ? यह यन्त्र ही सभी सिद्धियों को प्रदान करनेवाला है।

इत्यगस्त्यसंहितायां यन्त्रविधिर्नाम नवमोऽध्यायः।।9।।

दशमोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

पूजाविधानं वक्ष्यामि नारदाभिमतं च यत्।
वाल्मीकये मुनीन्द्राय द्वारपूजादिकं तथा।।1।।
आकर्णय मुनिश्रेष्ठ सर्वाभीष्टफलप्रदम्।।2।।

अगस्त्य बोले- हे मुनि श्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! नारद ने मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि को जो पूजा तथा द्वार पूजा विधि बतलायी थी वह में कहता हूँ, उसे सुनो इससे सभी मनोरथ सफल हो जाते हैं।

---

1. क. गुटिकीकृत्य।

श्रीरामद्वारपीठाङ्गपरिवारतया स्थिताः।
ये सुरास्तानिह स्तौमितन्मूलाः सिद्धयो यतः।

श्रीराम के द्वार पर, पीठ पर, अङ्ग के रूप में तथा परिवार के रूप में जो देवगण उल्लिखित हैं, उनकी स्तुतियाँ मैं करता हूँ; क्योंकि सिद्धियाँ उन्ही के द्वारा प्राप्त होतीं हैं।

वंदे गणपतिं भानुं त्रिलोकस्वामिनं शिवम्।।3।।
क्षेत्रपालं तथा धात्रीं विधातारमनन्तरम्।
गृहाधीशं गृहं गंगां यमुनां कुलदेवताम्।।4।।
प्रचण्डचण्डौ च तथा शंखपद्मनिधी अपि।
वास्तोष्पतिं द्वारलक्ष्मीं गुरुं वागधिदेवताम्।।5।।

सर्वप्रथम गणेश, सूर्य, तीनों लोकों के स्वामी शिव, क्षेत्रपाल तथा धात्री की पूजा करें। इसके बाद ब्रह्मा की पूजा करें। फिर वास्तु के स्वामी, वास्तु, गंगा, यमुना और कुलदेवता की पूजा करें। प्रचण्डा, चण्ड, शंख, पद्म, निधि, वास्तोष्पति, द्वारलक्ष्मी, गुरु और वाक् की देवता सरस्वती की पूजा करें।

एताः संपूज्य भक्त्याहं श्रीरामद्वारदेवताः।
महामण्डूककालाग्निरुद्राभ्यां प्रणमाम्यहम्।।6।।
आधारशक्तिकूर्माभ्यां नागाधिपतये तथा।
पृथिव्यै च तथा लक्ष्म्यै सागराय[1] नमो नमः।।7।।
श्वेतद्वीपाय रत्नाद्रौ कल्पवृक्षाय ते नमः।
सुवर्णमण्डपायाथ पुष्पकाय महार्हते।।8।।
विमानायाष्टरत्नाय सम्यक्सिंहासनाय च।
उद्यदादित्यसंशोभिपद्माय तदनन्तरम्।।9।।

श्रीराम के इन द्वार-देवताओं की पूजा कर प्रार्थना करें- 'महामण्डूक और कालाग्निरुद्र को प्रणाम करता हूँ। आधारशक्ति और कूर्मदेव को प्रणाम। शेषनाग को प्रणाम। पृथ्वी, लक्ष्मी और सागर को प्रणाम। श्वेतद्वीप और रत्नपर्वत पर स्थित कल्पवृक्ष को प्रणाम। सुवर्ण-मण्डप और विशाल पुष्पक विमान को प्रणाम। आठो रत्नों को और सुन्दर सिंहासन को प्रणाम। इसके बाद उगते हुए सूर्य के समान शोभायमान कमल पुष्प को प्रणाम।

1. क. क्षीरसागराय

नमामि धर्मज्ञानाभ्यां वैराग्याद्यग्नितः क्रमात्।
ऐश्वर्याय नमो धर्माज्ञानाभ्यां पूर्वतस्तथा।।10।।
अवैराग्याय च तथानैश्वर्याय नमो नमः।

इसके बाद धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य को अग्निकोण से आरम्भ चारो कोणों में प्रणाम। पूर्व में धर्म और अज्ञान, दक्षिण में ज्ञान और अवैराग्य पश्चिम में वैराग्य और अनैश्वर्य तथा उत्तर में ऐश्वर्य और अधर्म को प्रणाम।

अं अर्कमण्डलायाहमुपर्युपरि सर्वदा।।11।।
सत्त्वाय रजसे नित्यं तमसेपि नमो नमः।
चं चन्द्रमण्डलमिति ध्यात्वाध्यात्वा नमाम्यहम्।।12।।
रमग्निमण्डलायेति सम्पूज्यैव प्रयत्नतः।
विमलोत्कर्षिणीज्ञानाक्रियायोगाभ्य इत्यपि।।13।।
नमामि प्रह्वीसत्याभ्यामीशानायै दलान्तरे।
पूर्वादितोऽनुग्रहायै प्रणमामि तदन्तरे।।14।।

यन्त्र पर सूर्यमण्डल के ऊपर हमेशा सत्त्व, रजस् और तमस् को प्रणाम। चन्द्रमण्डल को बार-बार ध्यान कर प्रणाम। 'रं' स्वरूप अग्निमण्डल को प्रणाम। इस प्रकार यत्नपूर्वक पूजित दलों के मध्य में- विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या और ईशाना' को पूर्व से प्रारम्भ कर प्रणाम। इसके बाद अनुग्रहा को प्रणाम।

नमो भगवते तद्वद् विष्णवे तदनन्तरम्।
सर्वभूतात्मने चेति वासुदेवाय इत्यपि[1]।।15।।
ततः सर्वात्मकायेति योगपीठात्मने नमः।।
प्रणवादिनमोऽन्ताय मन्त्रपीठात्मने नमः।।16।।

इसके बाद भगवान् विष्णु को प्रणाम। प्रत्येक प्राणी की आत्मा में रहनेवाले वासुदेव को प्रणाम। तब सभी की आत्मा के स्वरूप योगपीठ स्वरूप सिंहासन को प्रणाम। आदि में प्रणव (ॐ कार) और अन्त में 'नमः' से युक्त मन्त्र पीठस्वरूप को प्रणाम।

यजामहे स्वरामों ह्रीं आत्मना संव्यवस्थितौ।
नमोऽन्ताय रामाय ससीताय नमो नमः।।17।।

1. घ. इत्यथ।

सांनिध्याधारयोगेन नियतेन षडात्मना।
व्यवस्थिताय रामाय नमोऽनन्ताय विष्णवे[1]।।18।।
श्रीबीजाद्योऽपि सीतायै स्वाहान्तोऽयं षडक्षरः।
तदेतन्मन्त्ररूपाय रामाय ज्योतिषे नमः।।19।।

ॐ रां रां यजामहे, ॐ ह्रीं आत्मने नमः, ॐ रामाय नमः, ॐ ससीताय नमः। सान्निध्य और आधार के संयोग से नियत रूप में जो छह स्वरूपों में स्थित हैं, ऐसे श्रीराम को प्रणाम। ॐ अनन्ताय नमः, ॐ विष्णवे नमः, ॐ श्रीं सीतायै स्वाहा ये षडक्षर मन्त्र हैं। इन मन्त्रों के स्वरूप ज्योतिःस्वरूप राम को प्रणाम।

सानुस्वारस्वरान्ताय वह्नये हृदयाय च।
नमश्चैव स्वरान्ताय स्वाहान्ताय कृशानवे।।20।।
शिरसेऽप्यग्नये चान्तः शिखायै वषडात्मने।।
ऐमस्त्राय हृदे नित्यं कवचाय हुं ते नमः[2]।।21।।
चतुर्दशस्वरान्ताय सानुस्वाराय वह्नये।।
नेत्राभ्यां वौषडान्ताय परोऽस्त्राय फडात्मने।।22।।

अनुस्वार के साथ अन्त में रेफ लगाकर वह्निदेव से न्यस्त हृदय को प्रणाम। वृद्धि के स्वामी अग्नि को प्रणाम। (एधेश्वराय कृशानवे स्वाहा) शिर पर न्यस्त वकार सहित अग्नि को प्रणाम (वं अग्नये शिरसे स्वाहा) वषट्कार जो शिखा पर न्यस्त हैं उन्हें प्रणाम। ('शिखायै वषट्') ऐं सहित वह्नि, जो नित्य कवच स्वरूप हैं उन्हें प्रणाम (ऐं वह्नये कवचाय हुम्) अनुस्वार सहित चतुर्दश स्वरों के साथ वह्नि जो वौषट् स्वरूप दोनों नेत्रों में न्यस्त हैं उन्हें प्रणाम (अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औ वह्नये नेत्राभ्यां वौषट्) इसके बाद फट् स्वरूप अस्त्र को प्रणाम (अस्त्राय फट्)

एवं नमः षडङ्गाय रामाय ज्योतिषे नमः।
आत्मान्तरात्मपरमज्ञानात्मभ्योऽग्नितः क्रमात्।।23।।

इस प्रकार आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा स्वरूप जो ज्योतिः स्वरूप राम क्रमशः अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान कोण में स्थित हैं, उन्हें प्रणाम।

निवृत्त्यै च प्रतिष्ठायै विद्यायै ते नमाम्यहम्।
शान्त्यै चात्मादिशक्तित्वे स्थित्यै तद्रूपिणे नमः।।24।।

1. घ. वह्नये। 2. घ. हुमेव च।

वासुदेवाय ते नित्यं तथा संकर्षणाय च।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय श्रियै शान्त्यै नमो नमः।।25।।
प्रीत्यै रत्यै नमो राम द्वितीयावरणात्मने।

निवृति, प्रतिष्ठा, विद्या और शान्ति जो आत्मा आदि चारों की शक्तियाँ हैं, उन्हें प्रणाम। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन चारो को प्रणाम। पुनः श्रीः, शान्ति, प्रीति और रति जो इनकी शक्तियाँ हैं, उन्हें द्वितीयावरण में प्रणाम।

अग्रे हनूमान् सुग्रीवो भरतश्च विभीषणः।।26।।
लक्ष्मणोऽप्यङ्गदश्चैव शत्रुघ्नो जाम्बवाँस्तथा।
धृष्टिर्जयन्तो[1] विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्द्धनः।।27।।
अकोपो धर्मपालश्च सुमन्तश्चाष्टमन्त्रिणः।
ऐतेभ्यो रामरूपेभ्यो युष्मभ्यं प्रणमाम्यहम्।।28।।

आगे में हनूमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अंगद, शत्रुघ्न, जाम्बवान्, धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्द्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त ये आठ मन्त्री हैं। ये सोलह, जो रामस्वरूप हैं, उन्हें प्रणाम।

इन्द्राग्नियमदेवेभ्यो सायुधेभ्यो नमो नमः।
नमो निर्ऋतये तुभ्यं वरुणाय नमो नमः।।29।।
वायवे धनदायाथ रुद्रायेशाय ते नमः।
ब्रह्मणेऽनन्तरूपाय दिक्पालायात्मने नमः।।30।।

अपने अपने अस्त्र-शस्त्रों के साथ इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, रुद्र, ब्रह्मा और अनन्त इन दश दिक्पालों को प्रणाम।

तदायुधाय वज्राय शक्तये दण्डकाय च।
नमः खड्गाय पाशाय ध्वजाय च गदात्मने।।31।।
त्रिशूलायाम्बुजायाथ चक्राय सततं नमः।

इनके अस्त्र-शस्त्र स्वरूप वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, ध्वज, गदा, त्रिशूल, कमल और चक्र को सदा प्रणाम।

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिर्गोतमस्तथा।।32।।
भरद्वाजः कौशिकश्च वाल्मीकिर्नारदस्तथा।

1. ब. धृतिर्जयन्तो।

वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, गौतम, भरद्वाज, कौशिक, वाल्मीकि और नारद ये आठ पार्षद् ऋषि हैं।

नलं नीलं च गवयं गवाक्षं गन्धमादनम्।।33।।
सुरभिश्चापि मैन्दं च द्विविदं च जपेत् क्रमात्।[1]

नल, नील, गवय, गवाक्ष, गन्धमादन, सुरभि, मैन्द और द्विविद का भी क्रमशः जप करना चाहिए।

शङ्खचक्रगदापद्मशार्ङ्गबाणात्मने नमः।।34।।
गरुत्मते नमस्तुभ्यं विष्वक्सेनादिकाश्च ये।

शंख, चक्र, गदा, पद्म, शार्ङ्ग और वाण इन शस्त्रास्त्रों को प्रणाम। हे गरुड़ आपको प्रणाम, शार्ङ्ग धारण करने वाले विष्वक्सेन आदि को प्रणाम।

सर्वैश्वर्यस्वरूपाय ज्योतिषे सततं नमः।।35।।
मनोवाक्कायसहितं कर्म यद् वा शुभाशुभम्।।
तत्सर्वं प्रीतये भूयान्नमो रामाय शार्ङ्गिणे।।36।।

सभी प्रकार के ऐश्वर्य के स्वरूप तथा प्रकाशस्वरूप श्रीराम को प्रणाम। मेरे मन, वचन तथा शरीर से जो भी शुभ अथवा अशुभ कर्म किये गये हैं उन सबसे श्रीराम प्रसन्न हों। शार्ङ्ग धनुषधारी श्रीराम को प्रणाम।

एतद् रहस्यं सततं प्रत्यूषसि समाहितः।
यः पठेद् राममाहात्म्यं सर्वैश्वर्यनिधिर्भवेत्।[2]।37।।
विनाशयेदसौभाग्यं दारिद्र्यौघं निकृन्तयेत्।
उपद्रवांश्च शमयेत् सर्वलोकं वशं नयेत्।।38।।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय ब्रह्मार्पणधियान्वहम्।
स याति शाश्वतं ब्रह्म पुनरावृत्तिदुर्ल्लभम्।।39।।

जो प्रतिदिन प्रातःकाल इस रहस्यमय राम माहात्म्य का पाठ करते हैं, वे सभी ऐश्वर्यों के भण्डार बन जाते हैं। यह माहात्म्य दुर्भाग्य का विनाश करता है; दरिद्रताओं को काटता है, उपद्रवों को शान्त करता है, सबको वश में ला देता है। जो प्रातःकाल उठकर ब्रह्म को समर्पित करने की बुद्धि से प्रतिदिन स्तोत्र का पाठ करते हैं। वे उस अविनाशी ब्रह्म को पा लेते हैं, जहाँ से पुनर्जन्म नहीं होता।

1. घ. ये चार चरण में अनुपलब्ध। 2. घ. विश्वैश्वर्य०

नारदीयमिदं स्तोत्रं सुतीक्ष्ण मुनिसत्तम।
पठितव्यं प्रयत्नेन रामार्चनपरायणैः।।40।।

हे मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! यह नारदोक्त स्तुति है जिसे श्रीराम की उपासना करनेवालों को प्रयत्नपूर्वक पढ़ना चाहिए।

गणपत्यादयः सर्वे द्वाराङ्गावृत्तिरूपिणः।
प्रणवादिचतुर्थ्यादिनमोन्ताः स्वस्वनामभिः।।41।।
पूजनीयाः प्रयत्नेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।
उपचारैः षोडशभिः तथैकादशभिर्मुने[1]।।42।।
पंचभिर्वा प्रयत्नेन स्वशक्त्यानुरूपतः।

गणपति आदि सभी जो द्वारदेवता, अङ्ग देवता और चारो ओर फेरा लगानेवाले (परिक्रमा करनेवाले) देवता हैं, उनकी पूजा गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि से प्रणव (ॐकार) आरम्भ में तथा नमः अन्त में लगाकर अपने अपने नाम के चतुथयेन्त पद से पंचोपचार, एकादशोपचार तथा षोडशोपचार से अपनी शक्ति के अनुसार करें।

गणपत्यादयोऽप्येवं पूजनीयाः प्रयत्नतः।।
[2]गणपत्यादयो ह्येते पूजिताः पूजयन्त्यपि।।43।।
[3]तस्मात् सर्वप्रयत्नेन स्तोत्रमेतत् समभ्यसेत्।।44।।

इसी प्रकार गणपति आदि की भी पूजा करनी चाहिए। ये गणपति आदि पूजित होकर स्वयं श्रीराम की पूजा करते हैं, अतः सभी उपायों से इस स्तोत्र का अभ्यास करना चाहिए।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये पूजाविधिर्नाम
दशमोऽध्यायः।

1. घ. पुनः। 2.-3. घ. में अनुपलब्ध।

एकादशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

शरीरं शोधयेदादावधिकारार्थमन्वहम्।
तीर्थावगाहनं बाह्येऽप्यन्तर्भूतविशोधनम्।।1।।
मातृकान्यासयोगैश्च शोधयेद् विध्यनुष्ठितः।

अगस्त्य बोले– प्रतिदिन पूजा के अधिकारी बनने के लिए सबसे पहले शरीर की शुद्धि करें। बाह्य शोधन के लिए जल में डुबकी लगावें तथा आन्तरिक शोधन के लिए विधिपूर्वक मातृकावर्णों का न्यास करें।

पूजाद्रव्याणि च ततः शोधयेत् प्रोक्षणादिभिः।।2।।
पूजापात्राणि शङ्खञ्च शोधयेत् क्षालनादिना।
शुद्धश्च शुद्धद्रव्यैश्च पूजयेत् पुरुषोत्तमम्।।3।।
एवमाराधितो देवः सम्यगाराधितो भवेत्।
न चेन्निरर्थकं सर्वं सिन्धुसैकतवृष्टिवत्।।4।।

इसके बाद पोंछकर पूजा में प्रयुक्त सामग्रियों का शोधन करें। पूजा की थाली, लोटा, शंख, आदि को जल से धोवें। पवित्र पात्रों और सामग्रियों से पुरुषोत्तम की पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार आराधना करने से देवता अच्छी तरह प्रसन्न होते हैं, नहीं तो समुद्र की रेत पर हुई वर्षा के समान सब कुछ व्यर्थ हो जाता है।

शौचाचमनहीनस्य स्नानसन्ध्यादिकाः क्रियाः।
निष्फलाः स्युर्यथा चेतो ह्यन्तरेण भवेत्तथा।।5।।

शौच और आचमन किये विना जो स्नान, सन्ध्या आदि करते हैं, उनकी समस्त क्रियाएँ व्यर्थ हो जाती हैं, जैसे चेतन के विना सब कुछ व्यर्थ हो जाता है।

संशोध्य पूजाद्रव्याणि स्वस्यापि बहिरन्तरम्।
शङ्खञ्च पूजयेत् पूर्वं पूज्यं पूजार्हतां व्रजेत्।।6।।

पूजा-सामग्रियों को पवित्र कर स्वयं भी बाहर और भीतर से पवित्र होकर शंख की पूजा करें। पहले पूजित शंख पूजा का साधन बनने योग्य होता है।

पूजकस्याथ पूज्यस्यापावनस्य कृतं वृथा।
अपावनान्यपूज्यानि साधनानि विवर्जयेत्।।7।।

अपवित्र पूजक ओर पूज्य दोनों द्वारा किए गये कार्य व्यर्थ हो जाते हैं। अतः अपवित्र एवं अपूज्य साधन का त्याग कर देना चाहिए।

अतः स्नात्वा प्रकुर्वीत भूतशुद्धिं विधाय च।
विन्यस्य मातृकां पूर्वं वैष्णवीं केशवादिकाम्।।8।।

इसलिए स्नान करके भूत-शुद्धि कर पहले वैष्णव और केशव की मातृका का न्यास करें।

विधाय तत्त्वन्यासञ्च न्यासं तन्मूर्तिपञ्जरम्।
तदृषिच्छन्दसोर्न्यासं[1] तथा तन्मन्त्रदेवताम्।।9।।
विन्यस्यैव षडङ्गानि तत्तद्बीजाक्षराणि च।

इसके बाद तत्त्वन्यास, मूर्ति-पंजरन्यास, ऋषि-न्यास, छन्दोन्यास, मन्त्र-न्यास तथा देवता-न्यास करें। इस छह अंगों का न्यास कर उनके बीजाक्षरों का भी न्यास करें।

अथातो देवताध्यानं ततः पूजनमन्ततः।।10।।
ततो निवेद्य तत्सर्वं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।
ततो विज्ञाप्य देवेशं परिवारांश्च पूजयेत्।।11।।
एवं सम्पूजितो देवः सर्वान् कामान् प्रयच्छति।

इसके बाद देवता का ध्यान कर पूजन करें। इसके बाद सब कुछ निवेदित कर अनन्यचित्त होकर मन्त्र का जप करें। तब मुख्य देव श्रीराम को सबकुछ ज्ञापित कर श्रीराम के परिजनों की पूजा करें। इस प्रकार पूजित देव सभी कामनाओं की पूर्ति करते हैं।

बाह्यपूजां ततः कुर्यादैहिकाभ्युदयाय वै।।12।।
विलिप्य वेदिकां सम्यङ्मण्डलं तत्र कारयेत्।

तब सांसारिक उन्नति के लिए बाह्य पूजा करें। तब वेदिका को लीप कर वहाँ उचित रीति से यन्त्र का निर्माण करावें।

---

1. घ. छन्दसोऽभ्यासं।

शालितण्डुलचूर्णैश्च नीलपीतसितासितैः।।13।।
लिखेदष्टदलं पद्मं चतुरस्त्रसमावृतम्।
षट्कोणं कर्णिकामध्ये कोणाग्रे वृत्तसंवृतम्।।14।।

धान के चावल के चूर्ण से नीला, पीला, सफेद और अन्य रंगों से चौकोर भूपुर सहित अष्टदल कमल बनायें और कर्णिका पर षट्कोण बनाकर उसके कोणाग्रभाग पर वृत्त बनाएँ।

साध्यमेतत् ततो शोभारेखाभिरुपशोभितम्।
सम्पूज्य मण्डलं चैव तत्र सिंहासनं न्यसेत्।।15।।

बीच में साध्य लिखकर सुन्दर रेखाओं से शोभित मण्डल की पूजा कर वहीं श्रीराम और श्रीसीताजी का सिंहासन रखें।

चन्द्रोदयपताकैश्च तोरणैरपि सर्वतः।
विचित्रं तत्र तत्रापि भित्तिस्तम्भस्थलादिषु।।16।।

चँदोवा, पताका और बंदनवार से सर्वत्र अनेक प्रकार से सुन्दर ढंग से दीवाल खम्भा आदि को सजायें।

एवं सुशोभितस्थाने सर्वमङ्गलसंयुते।
पुण्यस्त्रीभिर्गृहस्थैश्च परितो व्यवहर्तृभिः।।17।।
गायद्भिरपि नृत्यद्भिर्वदद्भिः स्तुतिपूर्वकम्।[1]
भेरीमृदङ्गवंश्यादिकांस्यतालादिभिर्बहु[2] ।।18।।
[3]वादयद्भिश्च बहुधा सम्यगाराधितो यदि।
रघुनाथः स्वयं तत्र प्रसन्नो भगवान् भवेत्।।19।।

इस प्रकार शुभ वस्तुओं से सुशोभित, पुण्यवती स्त्रियों और गृहस्थों पूजा-सामग्रियों को लानेवाले लोगों, गायकों, नर्तकों और अनेक स्तुति करनेवालों, तुरही, मृदङ्ग, बाँसुरी, झाल आदि बजानेवालों से घिरे हुए स्थान में सम्यक् पूजित होकर श्रीराम स्वयं वहाँ प्रसन्न होते हैं।

संपाद्य विविधैः पुष्पैः पूजयेच्चारुडालिकाम्।[4]
तुलसी पद्मजात्याद्यैर्मालैर्बहुविधैरपि।।20।।

अनेक प्रकार के फूलों, कमल, जूही, विभिन्न प्रकार की माला तथा तुलसीदल आदि से भरी सुन्दर डाली (चंगेरी) की पूजा करें।

1. घ. स्तुतिरूपकम्।2. घ. ०र्मुहुः।3. घ. में अनुपलब्ध।4. पूजयेत्पुष्पचंधनीम्।

स्वपुरो दक्षिणे तीर्थशुद्धवारिसुपूरितम्।
कलशं स्वपुरो वामभागे तु विनियोजयेत्।।21।।
अन्यानि पूजाद्रव्याणि पुरस्तादेव निक्षिपेत्।

इसे अपने आगे दाहिने भाग में रखें तथा तीर्थ के जल से भरा हुआ कलश अपने आगे वायें भाग में रखें। पूजा की अन्य सामग्रियाँ सामने में ही रखें।

आराधनाय देवस्य वेदिकाधः सुखासने।।22।।
कुशास्तरणवैयाघ्रचर्मवासो - विनिर्मिते ।
उपविश्य शुचिर्मौनी भूत्वा पूजां समाचरेत्।।23।।

देव की आराधना के लिए वेदी के नीचे सुख से वैठने योग्य आसन, जो कुश, व्याघ्रचर्म या कपड़े का वना हुआ हो उसपर मौन होकर बैठें और पूजा का आरम्भ करें।

तुलसीकाष्ठघटितैः रुद्राक्षाकारकारितैः।
शङ्खचक्रगदापद्मपादुकाकारकारितैः ।।24।।
निर्मितां मालिकां कण्ठे[1] निधायार्चनमाचरेत्।

रुद्राक्ष, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म या पादुका की आकृति की बनी हुई तुलसीकाष्ठ की माला कण्ठ में धारण कर पूजा प्रारम्भ करें।

तथामलकमालां च सम्यक् पुष्करमालिकाम्।।25।।
निर्माल्य तुलसीमालां शिरस्यपि निधाय वै।

साथ ही, आँवले के पुष्प की माला, या कमल की सुन्दर माला या तुलसी की माला शिर पर रखकर पूजा आरम्भ करें।

निर्लिप्य[2] चन्दनेनाङ्गमङ्कयेत् तस्य नामभिः।
तस्यायुधानि बाह्वोश्च तेनैव द्विजसत्तम।

अंगों पर चन्दन से श्रीराम के नामों का लेखन करें तथा बाहों पर उनके धनुष, बाण, गदा आदि आयुधों का अंकन उसी चन्दन से करें।

पापिष्ठो वाप्यपापिष्ठः सर्वज्ञोऽप्यज्ञ एव वा।।27।।
भवेदेवाधिकारोऽत्र पूजाकर्मण्यसंशयः।

1. घ. कर्णे।2. घ. निर्माल्य।

पापी हो या निष्पाप, विद्वान् हो या मूर्ख, श्रीराम की पूजा में सबका अधिकार है, इसमें सन्देह नहीं।

पद्मस्वस्तिकभद्रादिरूपेणाकुञ्च्य पद्द्वयम्।।28।।

पद्मासन, भद्रासन या स्वस्तिकासन के रूप में दोनों पैरों को मोड़कर बैठें।

विनायकं नमस्कृत्य सव्यांशे च सरस्वतीम्।
दक्षिणांशे पूर्ववच्च दुर्गां च क्षेत्रपं पुनः।।29।।
प्रणम्याथ गुरून् भूयो नत्वा गुरुपरम्पराम्।

गणेशजी को प्रणाम कर बायें भाग में सरस्वती को तथा पूर्ववत् दायें भाग में पर दुर्गा का न्यास कर पुनः वहीं क्षेत्रपाल का न्यास कर उन्हें प्रणाम करें। गुरु को प्रणाम कर अपनी गुरु-परम्परा को प्रणाम करें।

ततो देवं नमस्कृत्य कुर्यात् तालत्रयं पुनः।।30।।
तारमस्त्राय[1] फट् प्रोक्ता भ्रामयेद् दक्षिणं करम्।

तब देवता को प्रणाम कर तीन ताल की क्रिया (तेताला) करें। तब "ॐ अस्त्राय फट्" इस मन्त्र से दाहिने हाथ को घुमावें।

ततस्तु चिन्तयेद्देवमन्तःस्थानत्रयान्तरे।।31।।
ज्योतिर्मयमनःपूतं सत्यं ज्ञानसुखात्मकम्।

तब ज्योतिःस्वरूप, प्राणियों में पवित्र, सत्य, ज्ञान और सुख-स्वरूप देवता का ध्यान अन्तःकरण के तीनों में करें।

आत्मनः परितो वह्निं प्राकारं त्राणनाय च।।32।।
भूतप्रेतपिशाचेभ्यो विधाय तदनन्तरम्।
अद्भिः पुण्याक्षतैश्चैव वह्निबीजास्त्रमन्त्रितैः।।33।।
प्रक्षिपेत् परितो मन्त्री भयविघ्ननिवृत्तये।

इसके बाद घर की रक्षा के लिए अपने चारों ओर अग्नि का पूजन करें। तब भूत, प्रेत और पिशाच के लिए जल, अक्षत लेकर वह्निबीज (रं) एवं अस्त्र-मन्त्र 'फट्' से अभिमन्त्रित कर भय और विघ्न के नाश के लिए चारों ओर छिड़के।

हृदम्बुजे ब्रह्मकन्दसम्भूते ज्ञाननालके।।34।।
ऐश्वर्याष्टदलोपेते ज्ञानवैराग्यकर्णिके।[2]
आराग्रमात्रो जीवस्तु चिन्तनीयो मनीषिभिः।।35।।

1. क. ॐ कारश्चास्त्राय। 2. घ. परे वैराग्यकर्णिके।

हृदय रूपी कमल के ब्रह्म रूपी कन्द से निकले हुए ज्ञान रूपी नाल पर ऐश्वर्य आदि आठ दलों वाला कमल है, जिसकी कर्णिका (कमल का मध्य भाग) ज्ञान और वैराग्य की है, इस कमल पर आरे की नोंक के समान सूक्ष्म जीव अवस्थित है, इस प्रकार का ध्यान मनीषियों को करना चाहिए।

नेतव्यो हंसमन्त्रेण द्वादशान्तः स्थितः परः।
तेन संयोज्य विधिवत् भूतशुद्धिमथाचेरत्।।36।।

द्वादशार चक्र से इसे 'हं सः' इस मन्त्र से ऊपर लाना चाहिए और उससे शरीर का संयोजन कर भूत-शुद्धि करना चाहिए।

भूतानि चाथ[1] पृथिवी जलं तेजो मरुद् वियत्।
यद्यतो जायते तस्मिन् प्रलयोत्पादनं पुनः।।37।।

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पाँच भूत हैं, जहाँ से सृष्टि की उत्पत्ति होती है और पुनः उसी से जा मिलती है और पुनः उत्पन्न होती है।

शरीराकारभूतानां भूतानां शोधनं विदुः।
मरुदग्निसुधाबीजैः पञ्चाशन्मातृमात्रकैः।।38।।
प्राणान्निरुध्यात्मदेहं शोधयेत् तत्पुनर्दहेत्।
तं देहं पुनराप्लाव्य पुनर्जीवमिहानयेत्।।39।।

शरीर के आकार में स्थित इन पाँच भूतों की शुद्धि ही भूतशुद्धि है। वायुबीज (यं) अग्निबीज (रं) और सुधाबीज (वं) के साथ पचास मातृकाओं से यह क्रिया करें। इसमें सबसे पहले प्राणवायु को रोककर अपने सूक्ष्म शरीर का शोधन करें, फिर उस अध्यात्म रूप सूक्ष्म शरीर को अग्नि में जलावें, फिर उसे जल मे डुबोकर जीव को शरीर में प्रविष्ट करावें।

जीवने पुनरात्मानं चिन्तयेत् पुरुषाप्तये।
जीवस्य तत्त्वसिद्ध्यै च तस्याप्यात्मत्वसिद्धये।।40।।

जीवन में फिर पुरुषस्वरूप की प्राप्ति के लिए जीव के तत्त्व की सिद्धि तथा आत्मत्व की सिद्धि के लिए आत्मतत्त्व का चिन्तन करें।

नयनानयनार्थं च हंसः सोऽहमितीरयेत्।
भूतशुद्धिरियं नाम कर्त्तव्या मनसार्थकृत्[2]।।41।।

---

1. घ. नाम।2. घ. भूतसाक्ष्यकृत्।

शरीर से जीव को अलग करने और लाने के लिए क्रमशः 'ॐ हंसः' और 'ॐ सोऽहम्' इन मन्त्रों का प्रयोग करें। यह भूतशुद्धि कहलाती है, जो मन से करनी चाहिए। इससे प्रयोजन की सिद्धि होती है।

भूतशुद्धिं विना यस्य तपहोमादिकाः क्रियाः।[1]
भवन्ति निष्फलाः सर्वाः प्रकारेणाप्यनुष्ठिताः।।42।।

भूत शुद्धि के विना जो तप, होम आदि क्रियाएँ करते हैं, उनकी सभी क्रियाएँ विधानपूर्वक करने के बाद भी निष्फल होती हैं।

गृहोपसर्पणं चैव तथानुगमनं हरेः।
भक्त्या प्रदक्षिणं चैव पादयोः शोधनं विदुः[2]।।43।।

भगवान् के गृह (मन्दिर) जाना, श्रीहरि का अनुगमन करना तथा भक्ति पूर्वक प्रदक्षिणा करना ये तीन पैरों की शुद्धि है।

पूजार्थं पत्रपुष्पाणां भक्त्यैवोत्तोलनं हरेः।
करयोः सर्वशुद्धीनामियं शुद्धिर्विशिष्यते।।44।।

श्रीहरि की पूजा के लिए पत्र-पुष्प पहुँचाना हाथों की अनेक प्रकार की शुद्धियों में विशिष्ट मानी जाती है।

तन्नामकीर्तनं चैव गुणानामपि कीर्तनम्।
भक्त्या श्रीरामचन्द्रस्य वचसः शुद्धिरिष्यते।।45।।

भक्तिपूर्वक श्रीरामचन्द्र के नाम और गुणों का कीर्तन वाणी की शुद्धि मानी जाती है।

तत्कथाश्रवणं चैव तस्योत्सवनिरीक्षणम्।
श्रोत्रयोर्नेत्रयोश्चैव शुद्धिः सम्यगिहोच्यते।।46।।

उनकी कथा को सुनना, उत्सवों को देखना कानों और आँखों की सम्यक् शुद्धि कही गयी है।

पादोदकस्य निर्माल्यं मालानामपि धारणम्।
उच्यते शिरसः शुद्धिः प्रणतस्य हरेः पुनः।।47।।

भगवान् के चरणोदक, निर्माल्य और माला का धारण तथा शिर झुकाकर प्रणाम करना शिर की शुद्धि है।

---

1. घ. ध्यानजपहोमार्चनक्रियाः।2. घ. पुनः

आघ्राणं गन्धपुष्पादेश्चित्तस्य च तपोधन।
विशुद्धिः स्यादनन्तस्य घ्राणस्येहाभिधीयते।।48।।

पूजा में प्रयोग किए गये निर्माल्य रूप फूल-चन्दन को सूंघना चित्त और नाक की शुद्धि यहाँ कही गयी है।

पत्रं पुष्पादिकं यद्यद् रामपादयुगार्पितम्।
विशुद्ध्यै तद् भवत्येव स्वात्मना धार्यते यदि।।49।।

श्रीराम के चरणकमलों में अर्पित पुष्प आदि जहाँ हो और उन्हें धारण किया जाए तो वह स्थान शुद्ध हो जाता है।

अधुनाप्यथवा पूर्वं यद्यविष्णुसमर्पितम्।
तदेव पावनं लोके तद्धि सर्वं विशोधयेत्।।50।।

यदि इन समय अथवा पूर्व में विष्णु को समर्पित किए विना भी पुष्पादि उन्हें समर्पित करने के उदेश से रखे गये हो और मन से ध्यान किया जाए तो वह स्थान पवित्र हो जाता है। वही इस संसार में पवित्र है अतः इस प्रकार पवित्र करना चाहिए।

इत्यगस्त्यसंहितायां पूजाविधिभूतशुद्धिर्नाम
एकादशोऽध्यायः।।

अथ द्वादशोऽध्यायः

अथातो मा तृकान्यासक्रमोऽत्र परिपठ्यते।
नियम्यासून् ऋषिच्छन्दो देवताबीजपोषिताः।।1।।
शिरोवदनहृद्गुह्यपादेषुन्यास उच्यते।
कराङ्गुलीनां रेखासु स्वरैकैकं प्रविन्यसेत्।।2।।

अब यहाँ मातृकान्यास की विधि बतलायी जा रही है। प्राण वायु को नियमित कर ऋषि, छन्द, देवता और बीज का न्यास शिर, मुख, हृदय, गुह्य एवं पैरों में किया जाता है। हाथ की अंगुलियों की प्रत्येक रेखा पर एक एक स्वर का न्यास होता है।

विन्यसेत्प्रणवं पाणितलयोः पृष्ठयोरपि।

ह्रस्वदीर्घस्वरान्ताद्याः कादयः पञ्चपञ्चकाः।।3।।

आमश्चाद्यं तयोर्यादिक्षान्तश्च दशवर्णकः।

अङ्गुष्ठाद्यङ्गुलीनां च तथैव तलपृष्ठयोः।।4।।

सबसे पहले दोनों हाथों तथा पैरों के तल और उसके पीछे न्यास ॐकार से करें। ह्रस्व एवं दीर्घ स्वर वर्ण प्रारम्भ में लगाकर 'क' से 'म' तक पच्चीस वर्णों का तथा 'य' से 'क्ष' तक दश वर्णों से अंगुष्ठा से प्रारम्भ कर दोनों हाथों की अंगुलियों तथा करतल और करपृष्ठ में इस प्रकार न्यास करें-

अं आं कं खं गं घं ङं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
इ ई चं छं जं झं ञं तर्जनीभ्यां स्वाहा।
उ ऊं टं ठं डं ढं णं मध्यमाभ्यां वषट्।
ऋं ॠं तं थं दं धं नं अनामिकाभ्यां हुम्।
लृं लॄं पं फं बं भं मं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्।
एं ऐं यं रं लं वं करतलाभ्यां फट्।
ओं औं शं षं सं हं हौं क्षं करपृष्ठाभ्यां फट्।

न्यासस्ततः षडङ्गानां भवत्येवं प्रकल्पना।

हृदि मूर्ध्नि शिखायां च सर्वाङ्गे नेत्रयोरपि।।5।।

दिक्ष्वस्त्रं च नमः स्वाहा वषट् वौषडप्यथा।

अस्त्राय फडित्येवं षडङ्गानाञ्च पल्लवम्।।6।।

तत्तत् स्थाने चतुर्थ्यन्ते तत्तत् पल्लवयोगतः।

तत्तदङ्गतो न्यासस्तत्तदङ्गो नियोज्यते।।7।।

तब षडङ्गन्यास की विधि इस प्रकार करनी चाहिए। हृदय, शिर, शिखा, सर्वाङ्ग और दोनों नेत्रों में। दिशाओं में अस्त्र (फट्), नमः स्वाहा, वषट् तथा वौषट् तथा अस्त्राय फट् से षडङ्गन्यास का विस्तार किया जाता है। इसके बाद अपने बीजों का विस्तार उन अंगों के चतुर्थ्यन्त पद से उन अंगों का विनियोग होता है। जैसे- हृदयाय नमःए शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, सर्वाङ्गे वौषट्, नेत्रयोः वौषट्, दिक्षु अस्त्राय फट्।

अथान्तर्मातृकान्यासः कण्ठहृन्नाभिगुह्यके।[1]
पायौ भ्रूमध्यके पद्मे षोडशद्वादशच्छदम्।।8।।
दशपत्रे च षट्पत्रे चतुःपत्रे द्विपत्रके।
पञ्चाशद्वर्णविन्यासः पत्रसंख्याक्रमाद् भवेत्।।9।।
एकैकवर्णमेकैकपत्रान्ते विन्यसेन्मुने।

इसके बाद अन्तर्मातृकान्यास कण्ठ, हृदय, नाभि, लिंगमूल, गुदा एवं भ्रूमध्य में होता है। क्रमशः षोडशदल कमल, द्वादशदल कमल, दशदलकमल, षड्दलकमल स्वरूप यन्त्र, चतुर्दल कमल तथा द्विदल कमल में दलों की संख्या में पचासों वर्णों का न्यास करना चाहिए। एक एक वर्ण को एक एक दल पर न्यास करें।

जैसे-
अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः षोडशदलकमलाय कण्ठाय नमः।
कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं द्वादशदलकमलाय हृदयाय स्वाहा।
डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं दशदलकमलाय नाभये वषट्।
बं भं मं यं रं लं षड्दलकमलाय लिङ्गमूलाय वौषट्।
वं शं षं सं चतुर्दलकमलाय मूलाधाराये गुदाये वौषट्।
हं क्षं द्विदलकमलाय भ्रूमध्याय फट्।

एवमन्तः प्रविन्यस्य मनसातो बहिर्न्यसेत्।।10।।
शिरोवदनवृत्ते च चक्षुश्रोत्रयुगेऽपि च।
नासाकपोलयुगलं तथोष्ठाधरयोरपि।।11।।
ऊर्ध्वाधो दन्तपङ्क्तौ च मूर्द्धास्ये षोडशस्वरान्।[2]
कचवर्गे द्वयं बाह्वोः पञ्चसन्धिस्थले न्यसेत्।।12
टतवर्गद्वयं पादे सन्ध्यग्रेऽपि तथा न्यसेत्।[3]
पवर्गं पार्श्वयुगले पृष्ठनाभ्युदरेऽपि च।।13।।
हृदोर्मूलककुत्कक्षे[4] हृदयादिकरद्वयोः।[5]
जठराननयोश्चैव व्यापकं विनियोजयेत्।।14।।
पञ्चाशद्वर्णविन्यासः क्रमेणैवं विधीयते।

1. घ. कण्ठहृन्नाड़ीगुह्यके। 2. घ. द्वादशस्वरान्। 3. घ. पुनः। 4. स्कन्धे। 5. घ. हृदयादिकरपद्द्वये।

इस प्रकार अन्तर्मातृका न्यास कर मन ही मन बहिर्मातृकान्यास करें। शिर, मुखवृत्त, दोनों नेत्रों और कानों में, दोनों नाकों और दोनों गालों, अधर एवं ओष्ठ, ऊर्ध्वदन्त पंक्ति, अधोदन्त पंक्ति, मूर्द्धा एवं मुख इन सोलह अंगों में सोलह स्वरों का न्यास करें। इसके बाद क वर्ग एवं च वर्ग से क्रमशः दक्षिण और वाम बाहु के पाँच सन्धि स्थलों (बाहुमूल, कूर्प्पर, मणिबन्ध, अंगुलिमूल एवं अंगुल्यग्र) में न्यास करें। इस प्रकार ट वर्ग एवं त वर्ग से दक्षिण एवं वामपाद के पाँच सन्धिस्थलों (पादमूल, कूर्प्पर, मणिबन्ध, पादमूल एवं पादमूलाग्र) पर न्यास करें। प वर्ग से क्रमशः दक्षिणपार्श्व, वामपार्श्व, पृष्ठ, नाभि एवं उदर में न्यास करें। हृदय, दक्षिण बाहुमूल, ककुत्, वामबाहुमूल, हृदादिदक्षकर, हृदादिवामकर, हृदादिमुख में क्रमशः य से क्ष तक वर्णों का न्यास करें। पचास मातृकावर्णों का इस प्रकार न्यास विहित है।

ॐ माद्यन्तो नमोंतो वा सबिन्दुर्बिन्दुवर्जितः।।15।।
मायालक्ष्मीकामबीजपूर्वो न्यस्तव्य उच्यते।
केशवाय च कीर्त्यै च तथा नारायणाय च।।16।।
कान्त्यै तथा माधवाय तुष्ट्यै नम इति न्यसेत्।।
गोविन्दाय च तुष्ट्यै[1] च विष्णुर्धृत्यै वदेत् ततः।।17।।
मधुसूदनाय शान्त्यै च त्रिविक्रमाय क्रियायै च।
वामनाय च पुष्ट्यै[2] च श्रीधराय वदेत्तदा।।18।।
मेधायै हृषीकेशाय हृष्ट्यै[3] चापि नमस्तथा।
पद्मनाभाय श्रद्धायै[4] तथा दामोदराय च।।19।।
लज्जायै वासुदेवाय लक्ष्म्यै संकर्षणाय च।
सरस्वत्यै प्रद्युम्नाय प्रीत्यै नम इतीरयेत्।।20।।
अनिरुद्धाय रत्यै च स्वरान्ते प्रवदेदथ।

मातृकान्यास में आदि और अन्त में ॐ लगाकर अथवा आदि में ॐ और अन्त में नमः लगाकर, बिन्दु सहित अथवा बिन्दु रहित माया बीज (ह्रीं) लक्ष्मीबीज (श्रीं) एवं कामबीज (क्लीं) आदि में जोड़कर न्यास करें।

1. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अं केशवाय कीर्त्यै नमः।
2. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं आं नारायणाय कान्त्यै नमः।

1. घ. पुस्त्यै। 2. घ. दयायै। 3. हर्षायै। 4. घ. शुद्धायै।

3. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं इं माधवाय तुष्ट्यै नमः।
4. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ईं गोविन्दाय पुष्ट्यै नमः।
5. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं उं विष्णवे धृत्यै नमः।
6. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऊं मधूसूदनाय शान्त्यै नमः।
7. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऋं त्रिविक्रमाय क्रियायै नमः।
8. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ॠं वामनाय पुष्ट्यै नमः।
9. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं लृं श्रीधराय मेधायै नमः।
10. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं लॄं हृषीकेशाय हृष्ट्यै नमः।
11. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं एं पद्मनाभाय श्रद्धायै नमः।
12. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं दामोदराय लज्जायै नमः।
13. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ओं वासुदेवाय लक्ष्म्यै नमः।
14. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं औं संकर्षणाय सरस्वत्यै नमः।
15. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अं प्रद्युम्नाय प्रीत्यै नमः।
16. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अंः अनिरुद्धाय रत्यै नमः।

ये स्वर मातृकाओं के अन्त में बोलें।

यहाँ श्लोक संख्या 18 में 'वामनायं' के बाद 'दयायै' शब्द 'क' पाण्डुलिपि में है। ध्यातव्य है कि यहाँ विष्णु के 16 रूपों के साथ षोडशमातृकाओं का उल्लेख हुआ है। 'पुष्टि' को छोड़कर शेष 15 मातृकाएँ स्पष्ट हैं, अतः यहाँ 'पुष्ट्यै च' पाठ माना जाना चाहिए।

चक्रिणे विजयायै च गदिने शार्ङ्गिणे तथा।।21।।
दुर्गायै च प्रभायै च [सत्यायै] खड्गिने [तथा]।
[शंखिने च चण्डायै नमो तदनन्तरं वदेत्]।।22।।
हलिने च तथा वाण्यै नमो मुसलिने वदेत्।
विलासिन्यै शूलिने च जयायै तदनन्तरम्।।23।।
पाशिने विरजायै च तथा चाङ्कुशिने वदेत्।
विश्वायै च मुकुन्दाय विमदायै नमस्ततः।।24।।
नन्दजाय सुनन्दायै नन्दिने स्मृतये नमः।
नराय ऋद्ध्यै तद्वच्च नरकजिते तथा वदेत्।।25।।
समृद्ध्यै हरये शुद्ध्यै कृष्णाय तुष्ट्यै तथा।

सत्याय मत्यै सात्विताय सत्यै नमो वदेत्।।26।।
शौरये च क्षमायै च शूराय परमायै नमः।
जनार्दनाय चोमायै ततः स्याद् भूधराय च।।27।।
क्लेदिन्यै च विश्वमूर्त्यै क्लिन्नायै तदनन्तरम्।
वैकुण्ठाय नमस्तद्वद् वसुदायै नमस्ततः।।28।।
पुरुषोत्तमाय वसुधायै बलिनेऽपराजितायै।
तथा बलानुजाय परायणायै नम इतीरयेत्।।29।।
वृषभाय च सूक्ष्मायै वृषाय सन्ध्यायै नमः।
हंसाय च प्रज्ञायै वराहाय प्रभायै तथा।।30।।
विमलाय निशायै च नृसिंहाय तदन्तरम्।
अमोघायै नमस्तद्वद् वैष्णवीं मातृकां न्यसेत्।।31।।
क्रमेण कामबीजं च मातृकाक्षरमेव च।
[1]केशवं चापि कीर्तिं च नमोऽन्तं विन्यसेत् पुनः।।32।।
[2]शिरोवदनवृत्तादिस्थानेष्वेवं विधिः स्मृतः।

1 ॐ क्लीं कं चक्रिणे विजयायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
2 ॐ क्लीं खं गदिने दुर्गायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
3 ॐ क्लीं गं शार्ङ्गिणे प्रभायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
4 ॐ क्लीं घं खड्गिने सत्यायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
5 ॐ क्लीं ङं शङ्खिने चण्डायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
6 ॐ क्लीं चं हलिने वाण्यै केशवाय कीर्त्यै नमः।
7 ॐ क्लीं छं मुसलिने विलासिन्यै केशवाय कीर्त्यै नमः।
8 ॐ क्लीं जं शूलिने जयायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
9 ॐ क्लीं झं पाशिने विरजायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
10 ॐ क्लीं ञं अङ्कुशिने विश्वायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
11 ॐ क्लीं टं मुकुन्दाय विमदायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
12 ॐ क्लीं ठं नन्दजाय सुनन्दायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
13 ॐ क्लीं डं नन्दिने स्मृतये केशवाय कीर्त्यै नमः।
14 ॐ क्लीं ढं नराय ऋद्ध्यै केशवाय कीर्त्यै नमः।
15 ॐ क्लीं णं नरकजिते समृद्धौ केशवाय कीर्त्यै नमः।

1.-2. घ. में अनुपलब्ध।

16 ॐ क्लीं तं हरये शुद्धौ केशवाय कीर्त्यै नमः।
17 ॐ क्लीं थं कृष्णाय तुष्ट्यै केशवाय कीर्त्यै नमः।
18 ॐ क्लीं दं सत्याय मत्यै केशवाय कीर्त्यै नमः।
19 ॐ क्लीं धं सात्विताय सत्यै केशवाय कीर्त्यै नमः।
20 ॐ क्लीं नं शौरये क्षमायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
21 ॐ क्लीं पं शूराय परमायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
22 ॐ क्लीं फं जनार्दनाय उमायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
23 ॐ क्लीं बं भूधराय क्लेदिन्यै केशवाय कीर्त्यै नमः।
24 ॐ क्लीं भं विश्वमूर्तये क्लिन्नायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
25 ॐ क्लीं मं वैकुण्ठाय वसुदायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
26 ॐ क्लीं यं पुरुषोत्तमाय वसुधायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
27 ॐ क्लीं रं बलिने अपराजितायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
28 ॐ क्लीं लं बलानुजाय परायणायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
29 ॐ क्लीं वं वृषघ्नाय च सूक्ष्मायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
30 ॐ क्लीं शं वृषाय सन्ध्यायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
31 ॐ क्लीं षं हंसाय च केशवाय कीर्त्यै प्रज्ञायै नमः।
32 ॐ क्लीं सं वराहाय प्रभायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
33 ॐ क्लीं हं विमलाय निशायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
34 ॐ क्लीं क्षं नृसिंहाय अमोघायै केशवाय कीर्त्यै नमः।

इस प्रकार वैष्णव मन्त्रों से मातृकान्यास करें। क्रम से कामबीज (क्लीं) एवं मातृका के अक्षर बोलकर केशवाय कीर्त्यै नमः यह जोड़कर न्यास करें। शिर, मुखवृत्त आदि स्थानों में यह विधि कही गयी है।

(केशवादिन्यास के स्थल पर मूल 'क' पाण्डुलिपि का वाचन कष्टसाध्य होने के कारण पाठोद्धार के लिए म. म. गोविन्द ठाकुर (14वीं शती) कृत पूजा-प्रदीप के केशवादिन्यास का सहयोग लिया गया है, जो परम्परा की दृष्टि से प्रामाणिक है तथा पाण्डुलिपि 'क' के अनुरूप है। ये सम्पादित अंश कोष्ठ के अन्तर्गत हैं। बंगाल से प्रकाशित प्रति घ. में यह केशवादिन्यास बहुधा भिन्न है, अतः इसे पृथक् उद्धृत किया जा रहा है–

[चक्रिणे दयायै च गदिने शार्ङ्गिणे तथा।।21।।
दुर्गायै च प्रभायै च खड्गिने विन्यसेदथ।

सत्यायै शङ्खिने चैव चण्डायै च नमो नमः।।22।।
हलिने वाण्यै दद्याच्च तथा मुषलिने वदेत्।
विलासिन्यै शूलिने विजयायै तदनन्तरम्।।23।।
पाशिने विरजायै च तथा चाङ्कुशिने वदेत्।
विश्वायै च मुकुन्दाय विनदायै नमस्ततः।।24।।
नन्दजाय सुनन्दायै नन्दिने स्मृतये नमः।
नराय ऋद्ध्यै च तथा तद्वन्नरकजिते तथा।।25।।
समृद्ध्यै हरये शुद्ध्यै कृष्णाय बुद्धये तथा।
सत्याय भुक्त्यै सात्वताय मत्यै नम इतीरयेत्।।26।।
शौराय च क्षमायै च शूराय रमायै नमः।
जनार्दनाय चोमायै ततः स्याद् भूधराय च।।27।।
क्लेदिन्यै च विश्वमूर्त्यै क्लिन्नायै तदनन्तरम्।
वैकुण्ठाय नमस्तद्वद् वसुदायै नमस्ततः।
पुरुषोत्तमाय वसुधायै बलिने परायै ततः।।28।।
बलानुजाय परायणायै नम इतीरयेत्।
महाबलाय सूक्ष्मायै नमः स्यात्तदनन्तरम्।
वृषघ्नाय सन्ध्यायै वृषाय प्रज्ञायै नमः।।29।।
हंसाय च प्रभायै वराहाय निशायै तथा।
विमलाय अमोघायै नृसिंहाय तदन्तरम्।
विद्युतायै नमस्तद्वद् वैष्णवीं मातृकां न्यसेत्।।30।।
क्रमेण कामबीजञ्च मातृकाक्षरमेव च।]

[1]ॐकारं कामबीजं च मातृकाक्षरमेव च।।33।।
[2]एकं देवं तथा शक्तिमेकां नम इति क्रमः।

ॐकार, कामबीज, मातृकाक्षर इसके बाद एक देव एक शक्ति तथा इसके बाद नमः बोलें यहीं क्रम है।

केशवादिरयं न्यासो न्यासमात्रेण देहिनाम्।।34।।
अच्युतत्वं ददात्येव सत्यं सत्यं न संशयः।

यह केशवादि न्यास कहलाता है। केवल इस न्यास से प्राणयों को अच्युतत्व मिल जाता है, यह सत्य है, इसमें सन्देह नहीं।

1.-2. घ. में अनुपलब्ध।

सुतीक्ष्ण तत्त्वं वक्ष्यामि तत्त्वन्यासमतः शृणु।।35।।
यत्तत्वन्यासमात्रेण तत्त्वमेव प्रजायते।
मादयः प्रतिलोमेन कान्ताः स्युस्तत्त्वसंज्ञया।।36।।

हे सुतीक्ष्ण! अब मैं तत्त्व को बतलाता हूँ। इसलिए तत्त्वन्यास सुनो। केवल तत्त्वन्यास से तत्त्व उत्पन्न होता है। मकार से प्रारम्भ कर 'क' से अन्त कर किया गया न्यास तत्त्वन्यास कहलाता है।

नमः पराय पूर्वन्तु प्रणवान्ते व्यवस्थिताः।
जीवः प्राणाश्च बुद्धिश्चाहंकारो मनस्तथा।।37।।
सर्वाङ्गे हृदि विन्यस्य श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यपि।[1]
मूर्ध्नि घ्राणे च हृदयेऽप्युपस्थे पादयोरपि।।38।।

'नमः पराय' इस मन्त्र को सबसे पहले प्रणव के बाद जोड़कर जीव, प्राण, बुद्धि, अहंकार एवं मन को सर्वाङ्ग एवं हृदय में न्यास कर श्रोत्र आदि पाँच इन्द्रियों को भी मूर्द्धा, घ्राण, हृदय, उपस्थ एवं दोनों पैरों में न्यास करें।

श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वा च घ्राणरूपाणि देहिनाम्।
ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चापि तत्तत्स्थाने न्यसेत् पुनः।।39।।
वाक्पाणिपायुपादाश्च कर्माख्यानि ह्युपस्थकम्।
तथैव तत्तत् स्थानेषु तत्तदेव प्रविन्यसेत्।।40।।

दोनों कान, त्वचा, दोनों आँखें, जीभ, और नासिका, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ है तथा वाणी, दोनों हाथ, दोनों पैर, गुदा, और जननेन्द्रिय, ये पाँच कर्मेन्द्रिय हैं। उन उन स्थानों में न्यास करें। इसी क्रम से उन उन स्थानों उन उन तत्त्वों का न्यास करें।

शिरोमुखे च हृदये तथा गुह्येपि पादयोः।
आकाशानिलतेजांसि सलिलं पृथिवी तथा।।42।।
विन्यसेत् पूर्ववच्चैव न्यासविद्भिरुदीरितम्।[2]

शिर, मुख, हृदय, गुह्य एवं दोनों पैरों में क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल एवं पृथिवी का न्यास पूर्ववत् मन्त्र के साथ न्यास के ज्ञानियों के द्वारा कही गयी विधि से करें।

---

1. घ. शब्दादीनि ततः परम्। 2. घ. ०रुदाहृतम्।

सहौ शरौ च यश्चापि षश्च लश्च वलावपि।।43।।
क्षौं चेति दश वर्णाश्च प्रणवान्ते च पूर्ववत्।[1]

स एवं ह, श एवं र, य, ष, ल, व, ल तथा क्षौं ये दश वर्ण हैं, जो पूर्वोक्त विधि से प्रणव ॐकार के बाद लगाये जायेंगे।

हृत्पद्मे सोमसूर्याग्निस्वकलायुक्तमण्डलम्।।44।।
त्रयं हृद्येव विन्यस्य वासुदेवादयस्तथा।
परमेष्ठी च पुरुषो विश्वस्यापि निवर्तकः।[2]।45।।
नारायणो नृसिंहश्च सर्वकोपाख्यपूर्वकौ।
मूर्द्धास्ये हृदि गुह्ये च पादयोर्व्यापकं तथा।।46।।
तदात्मने नम इति तत्तत्स्थाने न्यसेत् ततः।

हृदय रूपी कमल में, अपनी कलाओं के साथ सोममण्डल, सूर्यमण्डल एवं अग्निमण्डल की कल्पना कर इन तीनों का हृदय में ही न्यास करें और वासुदेवादि न्यास करें। वासुदेव, परमेष्ठी, पुरुष, विश्वनिवर्तक, नारायण और नृसिंह, ये छह देव हैं। यहाँ दोनों प्रकार के न्यासों में कोप-मन्त्र (हुम्) को पूर्व में व्यवहार करें। इसमें 'तदात्मने नमः' यह योग कर मूर्द्धा, मुख, हृदय, गुह्य, दोनों पैर एवं सर्वांग में न्यास करें। जैसे–

ॐ हुं वासुदेवाय मूर्द्धात्मने नमः इति मूर्ध्नि।
ॐ हुं परमेष्ठिने मुखात्मने नमः इति मुखे।
ॐ हुं पुरुषाय हदयात्मने नमः इति हृदि।
ॐ हुं विश्वनिवर्तकाय गुह्यात्मने इति गुह्ये।
ॐ हुं नारायणाय पादात्मने इति पादयोः।
ॐ हुं नृसिंहाय सर्वाङ्गात्मने नमः इति सर्वाङ्गे।

अतत्त्वस्याप्यपूज्यस्य तत्प्राप्तेर्हेतुना[3] पुनः।।47।।
तत्त्वन्यासमिदं प्राहुर्न्यासं तत्त्वविदो बुधाः।

जो तत्त्व नहीं है और पूज्य भी नहीं है उसकी प्राप्ति के लिए कारण के साथ उन तत्त्वों के न्यास को मनीषियों ने तत्त्व-न्यास कहा है।

यः कुर्यात् तत्त्वविन्यासं स एव भवति ध्रुवम्।।48।।
तदात्मनानुप्रविश्य भगवानिह तिष्ठति।
यतः स एव तत्त्वानि तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्।।49।।

1. घ. प्रणम्यान्ते च पूर्ववत्।2. घ. विश्वकोऽपि निवृत्तिकः।3. क. तत्प्राप्तौ हेतना।

जो तत्त्वविन्यास करता है, वह तत्त्व ही हो जाता है। इन स्थानों में आत्मस्वरूप में प्रवेश कर भगवान् अवस्थित होते हैं; क्योंकि तत्त्व वही है, जिसमें सबकुछ अवस्थित है।

तन्मूर्तिपञ्जरं न्यासस्तस्य तन्मूर्तिसिद्धये।
आकर्णयैकचित्तः सन् यतोऽस्ति न फलान्तरम्।।50।।

भगवान् मूर्तिरूपी शरीर का यह न्यास उनके स्वरूप की सिद्धि के लिए एकाग्र होकर सुनो; क्योंकि इससे अधिक फल कही भी नहीं है।

नमो भगवते ब्रूयाद् वासुदेवाय इत्यथ।
ॐआदिरस्य[1] मन्त्रस्य आदायैकाक्षरं ततः।।51।।
एकैकमक्षरं तद्वत् श्रीरामाख्यमनोरपि।
द्विरावृत्याक्षरादानं विष्णोर्द्वादशनामसु।।52।।
नामैकैकमुपादाय सूर्यस्यापि च नामसु।

सबसे पहले ॐ नमो भगवते कहें। इसके बाद वासुदेवाय कहें। फिर इस मन्त्र के ॐकारसहित इस मन्त्र के एक एक अक्षर लें। इसी प्रकार श्रीराम के षडक्षर मन्त्र दो-दो बार लेकर विष्णु के बारह नामों में से एक-एक नाम जोड़कर फिर सूर्य के बारह नामों में से भी एक-एक नाम लगाकर मन्त्र बनायें।

ओमन्तश्च स्वरस्तद्वद् वासुदेवाक्षरं ततः।।53।।
श्रीराममन्त्रवर्णश्च ततः स्युः केशवादयः।
धात्रादयो नमोऽन्तोयं न्यस्तव्यो न्यासयोगतः।।54।।

इस मन्त्र में सबसे पहले ॐकार, तब स्वर-वर्ण, तब उसी प्रकार वासुदेव-मन्त्र के वर्ण, तब श्रीराममन्त्र के वर्ण तब केशव आदि बारह नाम, तब धाता आदि सूर्य के नाम तब अन्त में नमः लगाकर न्यास के योग से अङ्गन्यास करें।

ललाटे नाभिहृदये कण्ठपार्श्वांशकन्धरे।
पार्श्वान्तरांशे स्कन्धे च पृष्ठे ककुदि च क्रमात्।।55।।

इस मन्त्रों को क्रमशः ललाट, नाभि, हृदय, कण्ठ, पार्श्वभाग, कन्धर, वामपार्श्व, दक्षिणपार्श्व, स्कन्ध, पृष्ठ, ककुत् में न्यास करें।

1. घ. ओमादावस्य मन्त्रस्य।

केशवस्य ततो ब्रूयान्नारायण इति स्वयम्।
माधवश्चैव गोविन्दो विष्णुश्च मधुसूदनः।।56।।
त्रिविक्रमो वामनश्च श्रीधरो नवमः स्मृतः।
हृषीकेशः पद्मनाभस्तथा दामोदरः प्रभुः।।57।।
विष्णोर्द्वादशनामानि चेमानि मुनिसत्तम।

हे मुनिश्रेष्ठ! भगवान् विष्णु के ये बारह नाम हैं— केशव, नारायण,माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर।

धातार्यमा च मित्रः वरुणो हंसो भगस्तथा।[1]।58।।
विवश्वदिन्द्रः पूषा च पर्जन्यः दशमः स्मृतः।
त्वष्टा च विष्णुरित्येवं नामानि द्वादशात्मनः।।59।।
तन्मूर्तिपंजरन्यासोऽभिहितः परमेष्ठिना।

द्वादशात्मन् सूर्य के ये बारह नाम हैं— धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, हंस, भग, विवस्वान्, इन्द्र, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा, विष्णु। इस प्रकार मूर्तिपंजर-न्यास ब्रह्मा ने कहा है।

इस न्यास के मन्त्र इस प्रकार बनते हैं—

ॐ अ ॐ ॐ केशवाय द्वादशात्मने नमः। इति ललाटे

ॐ आ न रा नारायणाय धात्रे नमः। इति नाभौ

ॐ इ मो मा माधवाय अर्यम्णे नमः। इति हृदये

ॐ ई भ य गोविन्दाय मित्राय नमः। इति कण्ठे

ॐ उ ग न विष्णवे वरुणाय नमः। इति श्वासे

ॐ ऊ व मः मधुसूदनाय शोभगाय नमः। इति प्रश्वासे

ॐ ॠ ते ॐ त्रिविक्रमाय विवस्वते नमः। इति कन्धरे

ॐ ॡ वा रा वामनाय इन्द्राय नमः। इति ललाटे वामपार्श्वे

ॐ ए सु मा श्रीधराय पूषणे नमः। इति ललाटे दक्षिणपार्श्वे

ॐ ऐ दे य हृषीकेशाय पर्जन्याय नमः। इति ललाटे स्कन्धे

ॐ ओ वा न पद्मनाभाय त्वष्ट्रे नमः। इति ललाटे पृष्ठे

ॐ औ य मः दामोदराय विष्णवे नमः। इति ललाटे ककुदि

1. घ. वरुणोऽहंशुभगस्तथा, क. वरुणोसोभगस्तथा।

शिरोभ्रूमध्यहृदयनाभिगुह्यपदस्थले ।।60।।
मूलमन्त्राक्षरैर्न्यासं षडङ्गमपि विन्यसेत्।

इसके अतिरिक्त मूलमन्त्र के अक्षरों से शिर, भ्रूमध्य, हृदय, नाभि, गुदा एवं दोनों पैरों में षडङ्गन्यास भी करें। जैसे–

ॐ नमः पराय इति शिरसि।
रा नमः पराय भ्रूमध्ये
मा नमः पराय हृदये
य नमः पराय नाभौ
न नमः पराय गुदायाम्।
मः नमः पराय पादयोः।

एवं विन्यस्य विधिवत् साक्षान्नारायणो भवेत्।।61।।
जरारोगाभिचाराद्या:[1] प्रलयं यान्ति नान्यथा।
भूतप्रेतपिशाचाश्च तथैव ब्रह्मराक्षसाः।।62।।
कूष्माण्डाश्चैव डाकिन्यो नैव द्रष्टुमपि क्षमाः।
य एवं विन्यसेद्धीमान् रामः साक्षात् स्वयं भवेत्।।63।।
[2]नातः परतरं किञ्चित् पावनं पुण्यमस्ति हि।

इस प्रकार का न्यास कर वह साधक प्रत्यक्ष नारायणस्वरूप हो जाता है। बुढ़ापा, रोग, दूसरे के द्वारा किये गये अभिचार आदि नष्ट हो जाते हैं। भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, कूष्माण्ड, डाकिनी आदि तो उसे देखने में भी समर्थ नहीं होते हैं। जो बुद्धिमान् इस प्रकार न्यास करते हैं, वे साक्षात् श्रीराम-स्वरूप हो जाते हैं। इससे अधिक पवित्र पुण्य कुछ भी नहीं है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये शरीरन्यासे द्वादशोऽध्यायः।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

सुतीक्ष्ण पात्राण्यासाद्य ततः पूजार्थमादरात्।
शङ्खमस्त्रेण संशोध्य सदाधारे निधाय च।।1।।

---

1. घ. ज्वररोगाभिचाराद्याः। 2. क. में अनुपलब्ध।

पूजयेदग्निसूर्येन्दुबीजैस्तत्तत्कलान्वितैः ।
तत्तत्कलानां संख्या च दश द्वादश षोडश।।2।।

अगस्त्य बोले- हे सुतीक्ष्ण पूजा-पात्रों को एकत्रित कर पूजा के लिए आदर पूर्वक शंख को अस्त्र-मन्त्र से शोधित कर उसे सुन्दर आधार पर रखकर कलाओं के साथ अग्निबीज (रं) सूर्यबीज (सं) एवं चन्द्रबीज (सं) से पूजा करें। उनकी कलाएँ क्रमशः दस, बारह एवं सोलह हैं।

आधारशङ्खतीर्थेषु तत्तन्मण्डलमर्चयेत्।[1]
तीर्थावाहनमन्त्रैश्च तीर्थान्यावाह्य पूजयेत्।।3।।
गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैर्दीपाद्यैरति भक्तितः।
शङ्खे पाणितलं दत्त्वा जपेन्मन्त्रं षडक्षरम्।।4।।

आधार शंख के जल में उन उन मण्डलों की पूजा करें। तीर्थावाहन मन्त्रों से तीर्थों का आवहन कर गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप आदि से अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजा करें। इसके बाद शंख के ऊपर तलहत्थी रखकर षडक्षर मन्त्र का जप करें।

चिन्मयं चिन्तयेत्तीर्थमानीयाङ्कुशमुद्रया।
ब्रह्माण्डोदरतीर्थाभ्यां धेनुमुद्रां प्रदर्श्य च।।5।।
शङ्खमुद्रां चक्रमुद्रां गरुडाख्याञ्च दर्शयेत्।

ब्रह्माण्ड के उदर से तथा पवित्र तीर्थों से अंकुश मुद्रा के द्वारा तीर्थों का धेनु-मुद्रा दिखाकर शंखमुद्रा, चक्रमुद्रा और गरुडमुद्रा दिखावें।

परमीकृत्य यत्नेन पावनं[2] तद्विचिन्तयेत्।।6।।
देवस्य मूर्ध्नि तत्सिञ्चेत् पूजाद्रव्येषु चात्मनः।

इस प्रकार यत्न पूर्वक अमृतीकरण कर उस शंख जल को परम पवित्र मानें और उसे देवता के मस्तक पर, पूजा सामग्रियों पर तथा अपने ऊपर छिड़कें।

अवेक्षणं प्रोक्षणञ्च वीक्षणं ताडनं तथा।।7।।
अर्चनं चैव सर्वेषां पावनत्वं प्रकल्पयेत्।
पूतमेवाखिलं पूजायोग्यं भवति सार्थकम्।।8।।

उस शंखजल के दर्शन की क्रिया में प्रोक्षणमुद्रा दिखाकर तथा पुनः दर्शन में ताड़न मुद्रा दिखावें किन्तु दोनों क्रियाओं में अर्चन मुद्रा दिखाकर उसकी पवित्रता की कल्पना करें।

1. क. तत्तदात्मानमर्चयेत्।2. घ. परमं

अर्घ्यपाद्यप्रदानार्थं मधुपर्कार्थमप्यथ।
तथैवाचमनार्थञ्च न्यसेत् पात्रचतुष्टयम्।।9।।
आत्मनः पुरतः शङ्खं पूर्वतः साधयेत्ततः।
अर्घ्यपात्रे पाद्यपात्रे सम्पूर्य[1] सलिलं शुभम्।।10।।
तथार्घ्यपात्रे दातव्याः गन्धपुष्पयवाक्षताः।
कुशाग्रतिलदूर्वाश्च सर्षपाश्चार्थसिद्धये।।11।।

अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क एवं आचमन समर्पण के लिए चार पात्र स्थापित करें। अपने सामने में शंख को पूर्व दिशा से रखें। अर्घ्यपात्र और पाद्यपात्र में पवित्र जल भरकर अर्घ्य पात्र में चन्दन, पुष्प, यव, अक्षत, कुश का अगला भाग, तिल, दूर्वा और सरसो कामनाओं की पूर्ति के लिए डालें।

पाद्यपात्रे प्रदातव्यं श्यामाकं दूर्वमेव च।
अब्जं च विष्णुक्रान्तां च पाद्यसिद्ध्यै प्रयोजयेत्।।12।।

पाद्यपात्र में साँवा, दूर्वा, कमल एवं अपराजिता ये पाद्य के प्रयोजन के लिए डालें।

तथाचमनपात्रेऽपि दद्याज्जातीफलं मुने।
लवङ्गमपि कङ्कोलं शस्तमाचमनीयकम्।।13।।
दध्ना च मधुसर्पिभ्यां मधुपर्को भविष्यति।

आचमनपात्र में जायफल, लौंग, कंकोल डालें जो आचमन के लिए प्रशस्त हैं। दही, मधु और घृत मिलकर मधुपर्क बनता है।

स्नानं पुरुषसूक्तेन शुद्धशङ्खोदकेन च।।14।।
क्षीरदध्याज्यमधुभिः खण्डेन च पृथक् पृथक्।
नारिकेरोदकेनापि तथान्यच्च फलाम्बुना।[2]।15।।

शुद्ध शंख जल से, दूध, दही, घी, मधु और शर्करा से पृथक् पुरुषसूक्त से स्नान कराना चाहिए। अथवा नारियल के जल से तथा अन्य फलों के रस से।

[3]क्षीरस्नानं प्रकुर्वन्ति ये नराः राममूर्द्धनि।
शताश्वमेधजं पुण्यं बिन्दुना बिन्दुना शतम्।।16।।

---

1. घ. संपूज्य। 2. घ. तथा तालफलाम्बुभिः।3. यहाँ से श्लोक सं. 16 एवं 17 'घ' में अनुपलब्ध।

क्षीरं दशगुणं दध्ना घृतञ्चैव दशोत्तरम्।
घृताद् दशगुणं क्षौद्रं क्षौद्राद्दशगुणोत्तरम्।।17।।

जो मनुष्य श्रीराम की मूर्द्धा पर दूध से अभिषेक करते हैं, वे प्रत्येक बूँद से सौ सौ अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करते हैं। दही से अभिषेक की अपेक्षा दुग्धाभिषेक दश गुणा फलदायी है तथा घृताभिषेक सौ गुणा। घृताभिषेक का दशगुणा मधु-अभिषेक का फल है।

गन्धद्रव्यैश्च बहुभिस्तथा गन्धोदकेन च।
ऐक्षवेणोदकेनापि कर्प्पूरादिसुगन्धिना।।18।।
कदलीपनसाम्रोत्थजलेनापि सुगन्धिना।
शतं सहस्त्रमयुतं भक्त्या[1] चाप्यभिषेचयेत्।।19।।

चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों से चन्दन मिश्रित जल से अभिषेक करना चाहिए। ईख का रस, कर्पूर आदि सुगन्धित पदार्थ से अथवा केला, कटहल, आम आदि के सुगन्धित रस से सौ बार, हजार बार और दस हजार बार भक्तिपूर्वक अभिषेक करना चाहिए।

शङ्खं सम्पूर्य्य तेनैव सपुष्पेण रघूत्तमम्।
सकृष्णागरुधूपेन धूपयेदन्तरात्मना।।20।।
ततः शुद्धजलेनैव स्नापयेत् तमनन्यधीः।
राज्यार्थी राज्यसिद्ध्यर्थमैवं वत्सरमादरात्।।21।।
एवमेवाभिषिञ्चेत राजा भवति नान्यथा।

शंख को उन रसों से भरकर उसमें फूल डालकर अभिषेक करें। गुग्गुल का धूप बीच बीच में हृदय से अर्पित करे। तब शुद्ध जल से राज्य की कामना से एकाग्र होकर स्नान कराएँ। इस प्रकार, राज्यसिद्धि के लिए आदरपूर्वक एक वर्ष तक अभिषेक करे, तो वह राजा होता है, इसमें सन्देह नहीं।

दत्वाप्याचमनीयं च वाससी परिधापयेत्।।22।।
ततो भूषणदानञ्च सोत्तरीयेण वाससा।
यज्ञोपवीतं दत्वा च दद्याच्चन्दनमादरात्।।23।।

इसके बाद आचमन समर्पित कर जोड़ा वस्त्र पहनावें। तब आभूषण आदि देकर दुपट्टा के साथ वस्त्र चढ़ावें। फिर यज्ञोपवीत देकर आदरपूर्वक चन्दन दें।

1. घ. शक्त्या।

पुष्पाणि पुष्पमाल्यानि विविधानि समर्पयेत्।
धूपं दीपञ्च नैवद्यं ताम्बूलं च प्रदक्षिणम्।।24।।
नमस्कारञ्च पूजायामुपचारास्तु षोडश।

अनेक प्रकार के पुष्प और पुष्पमालाएँ समर्पित करें। तब धूप, दीप, नैवेद्य देकर प्रदक्षिणा (चार बार परिक्रमा) करें। पूजा के क्रम में अन्त में प्रणाम करें; ये षोडश उपचार हैं।

आवाहनादिकाश्चैव तथैकादश पञ्चधा।।25।।
भवन्त्येवोपचारास्तैः पूजां कुर्यादहर्निशम्।

आवाहन आदि एकादशोपचार और पञ्चोपचार भी होते हैं। इनसे भी दिन रात पूजा करें।

स्नानाद्यैरपि गन्धाद्यैः शक्त्या भक्त्योपकल्पितैः।।26।।
द्वारपीठामरानादौ अभ्यर्च्येव पुनस्ततः।
राममाराध्य विधिना सर्वैरप्युपचारकैः।।27।।
अङ्गावरणदेवाश्च सम्पूज्यान्यायुधानि च।

स्नान आदि से तथा चन्दन आदि से सामर्थ्यानुसार भक्तिपूर्वक द्वार और पीठ के देवताओं की पूजा करके ही विधिपूर्वक सभी उपचारों से श्रीराम की पूजा कर अंग देवताओं तथा आवरण की पूजा कर, श्रीराम के सभी शस्त्रास्त्रों की पूजा करें।

एवं सम्यक् समाराध्य साङ्गावरणवाहनम्।।28।।
स्तोतव्यमपि यत्नेन रामं शश्वत्प्रणम्य च।
यन्त्रस्था अपि मन्त्रैश्च सम्यक् पूज्या प्रयत्नतः।।29।।

इस प्रकार प्रतिदिन अंगदवताओं, आवरण देवताओं तथा वाहनों के साथ श्रीराम की पूजा कर बार बार प्रणाम कर श्रीराम की स्तुति करें तथा यन्त्र पर अवस्थित देवताओं की पूजा मन्त्रों से अच्छी तरह करें।

एवमेव यजेदग्नौ होमादावपि राघवम्।
तर्पणादावपि[1] जलेप्येवमाराध्य तर्पयेत्।।30।।

इसी प्रकार होम आदि में भी पहले श्रीराम की पूजा अग्नि में करें। तर्पण आदि के क्रम में भी जल में इसी प्रकार पूजा कर तर्पण करें।

---

1. घ. दर्पणादा

शालग्रामशिलायां च तुलसीदलकल्पिता।
पूजा श्रीरामचन्द्रस्य कोटिकोटिगुणाधिका।।31।।
प्रतिमायां च यन्त्रे वा भूमावग्नौ विवस्वति।
तले वा हृदये वापि विधायाराधयेद्[1] रहः।।32।।

शालग्राम की शिला पर तुलसीदास से श्रीराम की पूजा करोड़ो करोड़ गुणा फल देती है। प्रतिमा पर अथवा यन्त्र पर, भूमि पर अथवा अग्नि में, सूर्य में, हाथ की तलहत्थी पर अथवा अपने हृदय में श्री राम की पूजा एकान्त में करें।

कालेनैवोपचाराणां[2] पूजयेत्तुलसीदलैः।
घण्टां च वादयेद् दद्याद् देवायाचमनीयकम्।।33।।
मध्ये मध्ये च तद्वच्च नत्वा नत्वा समर्पयेत्।

समयानुसार सभी उपचारों के स्थान में तुलसीदल डालें; घंटा बजावें तथा देवता को आचमनीय समर्पित करें। बीच बीच में उन अर्घ्य वस्तु को नमन कर समर्पित करें।

मुकुलैः पतितैश्चैव खण्डितैः शोषितैरपि।।34।।
अनर्हैरपि पुष्पैश्च दलैः पत्रैश्च नार्चयेत्।[3]।

मुरझाए हुए, गिरे हुए, टूटे हुए, सूखे हुए तथा पूजा के अयोग्य पुष्प, पत्र और दल से पूजा न करें।

येन केनापि पुष्पेण पत्रेणापि फलेन वा।।35।।
यतः कुतश्चिदानीय यत्रकुत्रोद्भवेन च।
भवार्थं जीवितार्थं च नोऽर्चयेद् गर्हितस्थले।।36।।

जिस किसी भी फूल, पत्र एवं फल से जो इधर उधर जन्में हों और इधर उधर से अर्थात् अपवित्र स्थान से लाये गये हों, उनसे अशुभ स्थान में सांसारिक सुख और जीवन के लिए पूजा नहीं करनी चाहिए।

गंगायां गोप्रदानेन दिव्यवर्षशतत्रयम्।
तत्फलं प्राप्यते नित्यमाराध्याप्नोति तद्धरिम्।।37।।

गंगा के तट पर गोदान करने से जो तीन सौ दिव्य वर्ष तक स्वर्गवास का फल मिलता है वही फल उसे भी मिलता है जो प्रतिदिन श्री हरि की पूजा करें।

---

1. घ. विधायावाहयेद्रहः। 2. घ. अभावे चोपचाराणां। 3. घ. पत्रैर्न पूजयेत्

पत्रं पुष्पं फलं वापि रामाराधनसाधनम्।
दद्यादाराधितं यो वै तस्य पुण्यफलं शृणु।।38।।
कुरुक्षेत्रे च गंगायां प्रयागे पुरुषोत्तमे।
गोसहस्रप्रदानेन यत्पुण्यं समवाप्यते।।39।।
तदेतदखिलं पुण्यं प्राप्नोत्येव न संशयः।
समग्रमसमग्रं वा यो दद्यात् पूजितं हरिम्।।40।।
कदाचिदपि नित्यं वा पत्रपुष्पादिकं बहून्।
किं तीर्थसेवया दानैरन्यैर्बहुभिरीरितैः।।41।।
आराधनासमर्थश्चेद् दद्यादर्चनसाधनम्।

श्रीराम की आराधना के साधन पत्र, पुष्प, फल आदि जो दान करते हैं उनके पुण्य का फल सुनें। कुरुक्षेत्र, गंगा के तट, प्रयाग क्षेत्र और पुरुषोत्तम क्षेत्र में हजारों गाय दान करने का फल जो मिलता है, वही समग्र फल वह भी प्राप्त करता है, वही समग्र फल वह भी प्राप्त करता है। पूजा की सभी वस्तुएँ अथवा कुछ वस्तुएँ जो प्रतिदिन अथवा कभी कभी अथवा अधिक मात्रा में पत्र-पुष्प आदि जो दान करते हैं, उनके लिए अन्य स्थलों पर विहित दान और तीर्थ में निवास करना सब व्यर्थ है। स्वयं आराधना करने में जो असमर्थ हों वे आराधना के साधनों का दान करें।

[1]प्रदातुं वै नरान् कोऽस्ति कुर्यादर्चनदर्शनम्।।42।।
निस्ताराय तदेवालं भवाब्धेः मुनिसत्तम।
नैकं च यस्य विद्येत सोऽधो यात्येव नान्यथा।।43।।

अथवा मनुष्य को दान करने में भी भला कौन समर्थ है! इसलिए आराधना का दर्शन ही करना चाहिए। संसार के समुद्र में पार लगने के लिए वही पर्याप्त है। इनमें से जो एक भी नहीं करते उनका अधःपतन निश्चित है।

नियमव्यतिरेकेण यः कुर्याद् देवतार्चनम्।
किञ्चिदप्यस्य न फलं भस्मनीव हुतं मुने।।44।।
योऽर्चयेद् विधिवद् भक्त्या परानीतैश्च साधनैः।
पूजा फलार्द्धमेवास्य न समग्रफलं लभेत्।।45।।

1. घ. में अनुपलब्ध।

नियमों के विपरीत जो देवता की अर्चना करते हैं, उन्हें राख में हवन करने के समान कुछ भी फल नहीं होता है। जो विधानों के अनुसार भक्तिपूर्वक दूसरे के द्वारा लाये गये साधनों से पूजा करते हैं उन्हें आधा फल ही मिलता है; पूरा नहीं।

[1]यस्तु भक्त्या प्रयत्नेन स्वयं सम्पाद्य चाखिलम्।
साधनं चार्चयेद् विद्वान् समग्रफलभाग् भवेत्।।46।।
यो धनव्ययमायासमविचार्यार्च्चयेद् हरिम्।
स्वयं सम्पाद्य तत्सर्वं सवरं तत्फलं लभेत्।[2]।47।।

जो भक्तिपूर्वक स्वयं यत्न करके सभी सामग्रियों की व्यवस्था कर अर्चन करते हैं, उन्हें समग्र फल की प्राप्ति होती है। जो धन का व्यय और प्रयत्न दोनों की परवाह किए विना श्रीहरि की आराधना स्वयं साधन जुटाकर करते हैं तथा उन्हें नैवेद्य आदि अर्पित करते हैं, वे वर के साथ सम्पूर्ण फल पाते हैं।

स्वयमानीय चोत्पाद्य पूजोपकरणानि यः।
पूजयेत्तद्विधेयं स्यादुत्तमं प्रार्थदं हरिम्।[3]।48।।

स्वयं लाकर और स्वयं उगाकर पूजा सामग्रियों से श्रीहरि की पूजा करते हैं वह उत्तम विधि है इससे अच्छी प्रकार प्रयोजनों की सिद्धि होती है।

कलत्रपुत्रशिष्यादि[4] तत्तत् सम्पादितं च यत्।
मध्यमं चार्चनं तेन तैः सार्द्धं तत्फलं लभेत्।।49।।

पत्नी, पुत्र, शिष्य आदि के द्वारा व्यवस्था किए जाने पर मध्यम प्रकार की पूजा होती है उससे आधा फल मिलता है।

अन्यैः सम्पाद्य यद्दत्तं क्रयक्रीतेन तेन वा।
गौणमाराधितं तेन पादमात्रफलं लभेत्।।50।।

दूसरे के द्वारा व्यवस्था कर दान की गयी सामग्रियों से अथवा खरीदकर की गयी पूजा तुच्छ होती है इससे चौथाई फल ही मिलता है।

परारोपितवृक्षेभ्यः पुष्पाण्यानीय वार्चयेत्।
अविज्ञाप्यैव तैर्यस्तु निष्फलं तस्य पूजनम्।।51।।

दूसरे के द्वारा लगाये गये वृक्ष से विना सूचना दिये हुए फूल लाकर जो पूजा करते हैं वह निष्फल होती है।

---

1. चार चरण तक 'क' में अनुपलब्ध। 2. घ. सर्वं तत् सफलं भवेत्। 3. घ. मुनिसत्तम। 4. घ. नियोज्य यत्र शिष्यादि।

रामामाराध्य संस्थाप्य सन्निरुध्य च मुद्रया।[1]
प्रतिष्ठाप्यार्चयेद् विष्णुं न च तन्निष्फलं भवेत्।।52।।

मुद्रा के द्वारा श्रीराम का आराधना स्थापन एवं सन्निरौधन कर प्रतिष्ठित कर विष्णु की पूजा करते हैं तो वह निष्फल नहीं होता।

ततो[2] मुद्रान्तराण्येव दर्शयेच्चैव सादरम्।
प्रसाद्य सम्मुखीकृत्य सन्निधाप्य च पूजयेत्।।53।।
सकलीकृत्य प्राणास्तु तदानीमिन्द्रियाण्यपि।
यद्येवं पूजयेद्रामं भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति।।54।।

इसके बाद आदरपूर्वक दूसरी मुद्राएँ भी दिखावें। प्रसादजी, सम्मुखीकरणी और सन्निधापनी मुद्रा दिखाकर पूजा करें। उनके प्राण को सकलीकरण कर उनकी इन्द्रियों का भी सकलीकरण करें। यदि इस प्रकार श्रीराम की पूजा करें तो भुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त करते हैं।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये रामपूजाविधिर्नाम
त्रयोदशोऽध्यायः।।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

विधिवत् संस्कृतेप्यग्नौ देवमावाह्य पूजयेत्।
पूर्वोक्तेनैव विधिना साङ्गावरणवाहनम्[3]।।1।।

विधानपूर्वक मार्जन, उल्लेखन आदि से संस्कार की गयी अग्नि में देवता का आवाहन कर पूर्वोक्त विधि से अंग और आवरण के साथ पूजन करें।

विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि येनेष्टं साध्यतेऽखिलम्।
विहितं येऽनुतिष्ठन्ति त एव फलभाजनाः।।2।।

अब इसकी विधि कहूँगा, जिससे सब कुछ सिद्ध होता है। जो विधानपूर्वक अनुष्ठान करते हैं, वे ही सभी इच्छित फलों के भागी होते हैं, अन्यथा नहीं।

1. घ. इसके बाद घ. में प्रसाद्य सम्मुखीकृत्य इत्यादि चार चरण हैं।। 2. घ. तत्तन्मुद्रा°। 3. घ. साङ्गावरणमन्वहम्।

सर्वेषामीप्सितार्थानामन्यथा वै तथा नहि।
न्यायार्ज्जितैः साधनैश्च दानहोमार्चनादिकम्।।3।।
कुर्य्यान्न चेदधो याति भक्त्या कुर्वन्नपि द्विजः।

न्यायपूर्वक स्वयं अर्जित साधनों से दान, होम, अर्चना आदि करें, नहीं तो भक्तिपूर्वक इन्हें करते हुए भी अधोगति प्राप्त करते हैं।

भूमिस्थानं समीकृत्य षट्चतुष्काङ्गुलोत्तरम्[1]।।4।।
तावत् तन्निखनेदन्तश्चतुष्कोणन्तथान्ततः।
दिशि दिश्यन्तरञ्चैव पार्श्वस्थलचतुष्टयम्।।5।।

भूमि को समतल कर दश अंगुल ऊँची वेदिका बनाएँ। तब अन्दर की ओर चौकोर खनें। तब चारो दिशाओं और कोणों में भी चार पार्श्व बनावें। (इस प्रकार नीचे अष्टकोण बन जाएगा।)

एवं सलक्षणं[2] कृत्वा बहिः कुर्याच्च मेखलाः।
द्वादशाष्टचतुर्मानां स्वाङ्गुलैश्च क्रमान्मुने।।6।।
एवमुत्सेध आयामश्चतुराङ्गुलमेव तत्।
आयामोत्सेधरूपेण चतुष्काधिक्यतः क्रमात्।।7।।
चतुष्कत्रितयं कुयदिवं हि मेखलाक्रमः।

इस प्रकार के लक्षणों से कुण्ड बनाकर तब बाहर तीन मेखला क्रमशः बारह अंगुल आठ अंगुल और चार अंगुल मान से बनावें। इस प्रकार उठाकर विस्तार चार अंगुल ही रखें। चौड़ाई और ऊँचाई दोनों क्रमशः चार-चार अंगुल क्रमशः होगी। चार अंगुल की तीन मेखला बनावें; यही क्रम है।

कुण्डस्य पश्चिमे भागे योनिं कुर्यात्सलक्षणाम्।।8।।
अश्वत्थपत्रसदृशीं कुण्डे किञ्चित् प्रतिष्ठिताम्।
षट्चतुर्द्व्यङ्गुलाक्षा[3] च क्रमान्निम्ना भवेत्पुनः।।9।।
विस्तारेणापि सा योनिर्भवत्येव दशांगुला।[4]
मूलं नालं तथाग्रं च व्युत्क्रमात् षट्चतुस्त्रिकम्।।10।।
तन्मानाङ्गुलमानं स्यादेतत् कुण्डस्य लक्षणम्।
एकहस्तस्य कुण्डस्य[5] प्रकारोऽयं प्रकाशितः।।11।।

---

1. घ. षट्चतुर्द्व्यङ्गुलोत्तरम्। 2. घ. सुलक्षणम्। 3. घ. षट्चतुस्त्र्यङ्गुला सापि।4. योनिर्भवेत् पञ्चदशाङ्गुला।5. घ. चतुष्कोणैकहस्तस्य।

कुण्ड के पश्चिम भाग में लक्षण के अनुसार योनि बनावें। पीपल के पत्ते के आकार की योनि कुण्ड पर प्रतिष्ठित करनी चाहिए। छह अंगुल के बाद चार अंगुल, तब दो अंगुल, इस प्रकार क्रमशः योनि आगे की ओर ढालवाली होनी चाहिए। चौड़ाई और दस अंगुल लम्बाई की योनि होती है। योनिमूल में अवस्थित नाल और योनि के अग्रभाग की ऊँचाई नीचे के क्रम में छह अंगुल, चार अंगुल तथा तीन अंगुल की होनी चाहिए। यह कुण्ड का लक्षण है। यह एक हाथ लंबाई-चौड़ाईवाले कुण्ड का प्रकार स्पष्ट किया गया है।

द्विहस्तकुण्डमप्येवं द्विगुणीकृत्य मेखलाम्।
नाभेरप्यथवा कुण्डमेकमेखलकं भवेत्।।12।।
संक्षेपकर्मसु तथा वर्त्तुलं स्यात् सुलक्षणम्।

इसी प्रकार दो हाथ के कुण्ड में मेखला तथा नाभि दो गुनी होगी। अथवा संक्षिप्त कर्म में एक मेखलावाला कुण्ड हो सकता है तथा सभी लक्षणों से सम्पन्न वर्तुल कुण्ड का भी निर्माण किया जा सकता है।

चतुष्कोणैकहस्तस्य मध्ये कुण्डस्य चाङ्कनम्।।13।।
मध्यान्निधाय सूत्रेण भ्रामयेदभितो मुने।
कोणेषु यच्चाप्यधिकं तद्दिक्ष्वेव विनिर्दिशेत्।।14।।
इदञ्च वर्तुलं कुण्डं ततः स्यादर्धचन्द्रकम्।
दिशि चोत्तरतः कुण्डकोणभागार्द्धभागतः।।15।।
बहिरैन्द्र्या च वारुण्या यत्नान्मध्ये तु लांछयेत्।
संस्थाप्य भ्रामयेदेतदर्द्धचन्द्रं शुभप्रदम्।[1]।16।।

एक हाथ के चौकोर भूमि के मध्य में कुण्ड का अंकन करना चाहिए। मध्यभाग से एक धागा लेकर उसे चारो ओर घुमावें। कोणों में और दिशाओं में चिह्न लगावें। यह वर्तुल कुण्ड कहलाता है। इसके बाद अर्द्धचन्द्र कुण्ड भी होता है। कुण्ड में उत्तर की ओर से कोण के आधे भाग पर पुनः पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा तक सूत्र रखकर मध्य में स्थापित कर घुमावें। यह अर्द्धचन्द्राकार कुण्ड शुभ फल देता है।

(महामहोपाध्याय मधुसूदन ओझा ने 'यज्ञमधुसूदन' नामक ग्रन्थ में वर्तुल कुण्ड बनाने की तीन विधियाँ दी हैं, जिनमें एक विधि के अनुसार चौकोर क्षेत्र में

1. घ. सुशोभनम्।

एक कोण से दूसरे कोण तक की दूरी का आधा कोणार्द्ध कहलाता है। उस कोणार्द्ध का आठवाँ भाग के बराबर की दूरी पर चतुष्कोण में चिह्न लगा लेना चाहिए। तब उन चिह्नों से होकर एक वृत्त बनाना चाहिए। यह वर्तुल कुण्ड कहलाता है। अगस्त्य-संहिता का भी यहीं मत प्रतीत होता है, किन्तु इस स्थल पर पाण्डुलिपि 'क' अपठनीय है।)

मेखलास्वष्टपत्राणि वर्तुलस्य तपोनिधे।
पद्माकारं भवेदेतत् कुण्डं सर्वफलप्रदम्।[1]।17।।

वर्तुल कुण्ड की मेखलाओं में आठ दल होंगे। इस प्रकार वह कुण्ड कमल के आकार का होगा, जो सभी प्रकार से फलदायक है।

शतहोमे रत्निमात्रं तदूर्द्ध्वं मुष्टिसम्मितम्।
सहस्रेप्ययुतेऽप्यर्द्धलक्षे लक्षेऽपि च क्रमात्।।18।।
पञ्चपञ्चाङ्गुलाधिक्याद् वर्द्धतेऽरत्निमात्रतः।
कुण्डञ्च कोटिहोमेऽपि तदूर्द्ध्वेऽपि कराष्टकम्।।19।।

सौ आहुति वाले होम में मुट्ठी बँधे हाथ की लम्बाई के बराबर, इसके ऊपर मुट्ठी खुले हाथ की लम्बाई के बराबर कुण्ड बनावें। हजार, दश हजार और उससे ऊपर लाखों आहुति के लिए क्रमशः मुट्ठी बँधे हाथ की लम्बाई से पाँच पाँच अंगुल क्रमशः बढ़ाते हुए एक हाथ तक बढ़ावें इस प्रकार कोटि होम तक के लिए कुण्ड बनावें। उसके ऊपर आहुति संख्या होने पर आठ हाथ की लंबाई-चौड़ाई वाला कुण्ड बनावें।

मुष्ट्यरत्निमिते कुण्डे दशद्वादशसंख्यया।
क्रमेणैवाङ्गुलानां च प्रथमा मेखला भवेत्।।20।।

मुट्ठी खोलकर एक हाथ की लम्बाई वाले कुण्ड में बारह अंगुल तथा बन्द मुट्ठी वाले हाथ की लम्बाई के परिमाण के कुण्ड में बारह अंगुल की पहली मेखला होती है।

द्वितीये च तृतीये च त्र्यंशे त्र्यशे विनिर्दिशेत्।
सर्वेषामेव कुण्डानामङ्गुलिद्वयवृद्धितः।।21।।
प्रथमा मेखला कार्या त्र्यंशेऽप्यन्या तु पूर्ववत्।
कण्ठोऽष्टयवमात्रः स्यात् कुण्डे च करमात्रके।।22।।
कुण्डे षड्यवमात्रः स्यात् कण्ठो रत्निप्रमाणके।
तथा चतुर्यवैः कण्ठो मुष्टिमात्रे विनिर्दिशेत्।।23।।

---
1. घ. में अनुपलब्ध।

दूसरी और तीसरी मेखला भी एक तिहाई भाग में होनी चाहिए। सभी प्रकार के कुण्डों में दो-दो अंगुलियाँ बढ़ाकर मेखला बनानी चाहिए। पहली मेखला एक तिहाई भाग में बनावें और अन्य मेखलाएँ पूर्ववत् परिमाण में बनाएँ। एक हाथवाले कुण्ड में कण्ठ का भाग (योनि का अग्रभाग, जो कुण्ड में निराधार स्थापित किया जाये) आठ यव के परिमाण का होगा तथा रत्निप्रमाण (मुट्ठी बँधा हाथ) के कुण्ड में कण्ठ छह यव के परिमाण का होगा तथा मुट्ठी वाले भाग से रहित एक हाथ के प्रमाण वाले कुण्ड में चार यव के परिमाण का कण्ठ बनावें।

सर्वेषु कुण्डमानेषु चाङ्गुलिद्वयवृद्धितः।
कुण्डो यत्नेन कर्तव्यो भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः।।24।।

भोग और मोक्ष की इच्छा रखनेवाले सभी प्रकार के कुण्डों में दो-दो अंगुल बढ़ाकर यत्नपूर्वक कुण्ड का निर्माण करें।

सात्त्विकी राजसी चैव तामसी च क्रमाद् भवेत्।
प्रथमा च द्वितीया च तृतीया मेखला स्मृता।।25।।

कुण्ड तीन प्रकार के होते हैं– सात्विकी, राजसी एवं तामसी तथा मेखला भी प्रथमा, द्वितीया एवं तृतीया के नाम से तीन होतीं हैं।

योनिः कुण्डानुसारेण कुर्यादाद्यन्तमध्यतः।
उक्ताङ्गुलिप्रमाणेन द्विगुणाञ्च चतुर्गुणाम्।।26।।
होमसंख्यानुविधिना सर्वलक्षणलक्षितम्।
स्रुवं बाहुप्रमाणेन होमार्थं विदधीत वै।।27।।

कुण्ड के परिमाण के अनुसार कुण्ड की योनि आरम्भ, अन्त और मध्य भाग का निर्माण पूर्वोक्त अंगुल के प्रमाण से दो दुना या चारगुना करें। होम-संख्या के अनुसार सभी लक्षणों से सम्पन्न मेखलाओं का निर्माण करें। होम के लिए एक हाथ का स्रुव बनावें।

चतुरस्रं विधायादौ सप्तपञ्चाङ्गुलं क्रमात्।
तृतीयांशेन गर्तः स्यादन्तर्वृत्तशोभितम्।।28।।
खनित्वा समं तिर्यगूर्द्ध्वं तदधः शोधयेद् बहिः।
चतुर्थांशं चाङ्गुलस्य शेषं त्वर्द्धं[1] तदन्ततः।।29।।

1. घ. शेषाच्चार्द्धम्।

कुण्ड निर्माण के लिए सबसे पहले समतल भूमि पर बारह अंगुल पर्यन्त चौकोर गड्ढा बनावें। इसके बाद एक तिहाई भाग वृत्ताकार बनावें। इसके बाद टेढ़ा कर ऊपर की ओर खनें। इस क्रम में पहले एक अंगुल के चौथाई भाग तक खनें तथा अन्त तक आधा अंगुल टेढ़ा खनें।

रम्यां च मेखलां खाते शिष्टेनार्द्धेन कारयेत्।
कुर्य्यात् त्रिभागविस्तारां चाङ्गुष्ठेन समायुताम्।।30।।
सार्द्धमङ्गुष्ठकं चास्य तदग्रे तु मुखं भवेत्।
चतुरङ्गुलविस्तारं पञ्चाङ्गुलमथापि वा।।31।।
द्वित्रयाङ्गुलकं तस्य मध्यान्तं च शोभनम्।
सुषिरं कुण्डदेशे स्याद् विशेद्यावत्कनीयसी।।32।।
शेषं दण्डं च कर्त्तव्यं यथारुचि विचित्रकम्।।[1]

तब शेष भाग के बीच में सुन्दर मेखला बनानी चाहिए। यह मेखला तीन अंगूठे की चौड़ाई लेकर बनावें। तब इसके आगे डेढ़ अंगूठे का मुख बनावें। यह मुख चार अंगुल अथवा पाँच अंगुल चौड़ा होगा। दो अथवा तीन अंगुल चौड़ा इसका मध्य भाग तथा अन्तिम भाग होगा, जिसे वह देशने में सुन्दर लगे। कुण्ड के समीप एक छिद्रयुक्त नालिका रखें, जिनमें कनिष्ठा अंगुली घुस सके। एक डंडा भी अपनी रुचि के अनुसार रंग-बिरंगा रखें।

चतुःकोणसमायुक्तो हस्तमात्रः स्रुवो भवेत्।।33।।
चतुष्कं शोभनं वृत्तं द्व्यङ्गुलं विदधीत वै।
यथाल्पपङ्के गोः पादं रुचिरं दृश्यते तथा।।34।।

एक हाथ की लम्बाई वाला चौकोर स्रुव होता है। दो अंगुल परिमाण के सुन्दर चार वृत्त दो अंगुल के परिमाण में रहना चाहिए। जैसे थोड़े कीचड़ में गाय के खुर की सुन्दर आकृति बन जाती है, उसी प्रकार स्रुव का आकार होना चाहिए।

पलाशपत्रे निच्छिद्रे रुचिरे स्रुक्स्रुवौ मुने।
विदध्याद् वाश्वत्थपत्रे संक्षिप्ते होमकर्मणि।।35।।

संक्षिप्त हवन में विना छिद्र वाले पलाश अथवा पीपल के पत्ते का उपयोग स्रुव एवं स्रुक् के अनुकल्प में करना चाहिए।

---

1. घ. यथाकिञ्चिद विचित्रकम्।

ततः कुण्डस्थलं सम्यग् गोमयेनोपलिप्य च।
शालितण्डुलचूर्णैश्च नीलपीतसितासितैः।।36।।
शोभोपशोभासंयुक्तं मण्डलं व्यक्तमुज्ज्वलम्।
कुण्डस्य सन्निधौ[1] सम्यग् वायव्ये विदधीत वै।।37।।

तब कुण्ड के स्थल को भलीभाँति गाय के गोबर से लीप कर चावल के नील, पीला, सफेद और काला पीठा से विभिन्न प्रकार से सजाकर स्पष्ट एवं चमकीला यन्त्र कुण्ड के समीप वायुकोण (पश्चिमोत्तर कोण) में लिखें।

तत्राष्टपत्रं कमलं वृत्तत्रयपरिवृतम्।
सोमसूर्याग्निबिम्बे द्वे तथा कुर्याद् विचक्षणः।।38।।

वहाँ अष्टदल कमल लिखें, जो तीन वृत्तों से घिरा हुआ हो तथा उसपर चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि के दो बिम्ब बनाएँ।

चतुरस्त्रं बहिस्तस्य षट्कोणं कर्णिकान्तरे।
पीतं पूर्वे सितं देयं पश्चिमेऽप्युत्तरे तथा।।39।।
रक्तं तु दक्षिणे कृष्णं पाटलं वह्निसंस्थितम्।
निर्ऋते नीलवर्णन्तु वायव्ये धूम्रवर्णकम्।।40।।
ऐशे गौरं विनिर्दिष्टमष्टपत्रे त्वयं क्रमः।

इसके बाहर चतुर्भुज बनाएँ तथा कर्णिका (मध्यभाग) में षट्कोण बनाएँ।

शङ्खचक्रगदापद्मं धनुर्बाणाश्च[2] मण्डले।।41।।
विलिखेद् वर्णकैः सम्यक् तत्र रामं समर्चयेत्।

शंख, चक्र,गदा, पद्म, धनुष और बाण इस षट्कोण में सुन्दर ढंग से बनाएँ और वहाँ श्रीराम की अर्चना करें।

कुण्डान्तरेप्येवमेवमाराध्य श्रद्धया मुने।[3]।42।।
आदौ वह्निमुखं कुर्यादुपविष्टः सुविष्टरे।

दूसरे कुण्डों में भी इसी प्रकार श्रद्धा से आराधना कर सुन्दर विष्टर (25 कुशों से निर्मित अधःकेश पुंज) पर बैठकर सबसे पहले अग्निमुख करें।

प्राणानायम्य मनसा जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।।43।।
यावन्मरुत् संचरति सर्वाङ्गेष्वपि निश्चलः।

1. घ. दक्षिणे। 2. घ. धनुर्बाणानि । 3. घ. शृणुयान्मुने।

प्राणायाम कर मन ही मन एकाग्र होकर मन्त्र का जप तब तक करें, जबतक कि वायु सभी अंगों में निश्चल होकर संचरण न करने लगे।

सङ्कल्प्य स्थण्डिले कुण्डे कृत्वा लेखाश्च मध्यमाः।।44।।
ऊर्ध्वं तिर्यक् तिस्र एव वह्निमत्रादधीत वै।
प्रोक्ष्योपसार्य्य[1] तत्पश्चाद्दत्वा विष्टरमादरात्।।45।।

स्थण्डिल अथवा कुण्ड में संकल्प कर मध्य में तीन रेखाएँ नीचे से ऊपर की ओर तथा तीन दायें से बाये आलेखन करें। तब यहाँ अग्नि का आधान करें। इसके बाद अग्नि का प्रोक्षण और अपसारण कर कुश से परिस्तरण करें।

लक्ष्मीमृतुमतीं तत्र प्रभोर्नारायणस्य च।
ग्राम्यधर्मेण सञ्जातमग्निं तत्र विचिन्तयेत्।।46।।

वहाँ लक्ष्मी को रजस्वला के रूप में ध्यान करें और प्रभु नारायण के संयोग से उत्पन्न अग्नि का स्मरण करें।

प्रमथ्य विधिनैवाग्निमाहिताग्नेर्गृहादपि।
आनीय चादधीतात्र कुशैः प्रज्वाल्य यत्नतः।।47।।

अग्नि का विधानपूर्वक मन्थन कर अथवा आहिताग्नि के घर से लाकर कुश से अग्नि प्रज्वलित कर यहाँ आधान करें।

सम्प्रोक्ष्य याज्ञिकैः काष्ठैः पुनः प्रज्वालयेदपि।
प्राणायामन्ततः कुर्यात् परिस्तार्य कुशाङ्कुरैः।।48।।

यज्ञीय काष्ठ से प्रोक्षण कर पुनः उसे प्रज्वलित करें, तब कुश से परिस्तरण कर प्राणायाम करें।

स्वगृह्योक्तविधानेन वासुदेवादिभिर्मुने।
पात्राण्यासाद्य विधिवदिध्ममन्त्रेण तन्त्रवित्।।49।।

हे मुनि सुतीक्ष्ण! मन्त्र के ज्ञानी अपनी शाखा के गृह्यसूक्त की विधि के अनुसार अथवा वासुदेव आदि की पद्धति के अनुसार पात्रों को यथास्थान विधानपूर्वक इध्ममन्त्र से रखें।

तान्यवेक्ष्य पवित्रेण चोत्तमानि विधाय च।
पुनः प्रोक्ष्यानयेत् पात्रं परिपूर्य शुभाम्बुना।।50।।

1. घ. प्रोक्ष्य प्रसार्य्य।

पवित्री कुश हाथ में रखकर उन पात्रों का अवेक्षण (अवलोकन) कर उन्हें उत्तान स्थापित कर फिर प्रोक्षण (धोकर) कर पात्रों को शुभ जल से भरकर रखें।

कृत्वा कुशपवित्रं च तत्रोत्पूर्य निधाय तत्।
दिश्युत्तरस्यां तत्पात्रं प्रणीतेत्युच्यते बुधैः।।51।।

कुश की दो पवित्री का निर्माण जल भरे पात्र के ऊपर रखें। उत्तर दिशा में रखे गये उस पात्र को प्रणीता कहा जाता है।

तत्रार्चयेत् प्रभुं विष्णुं ब्रह्माणं ब्रह्मणार्चयेत्।[1]
आज्यं[2] संस्कृत्य विधिवत् स्रुक्स्रुवावोमिति ब्रुवन्।।52।।

वहाँ प्रभु विष्णु तथा ब्रह्मा की अर्चना ब्रह्मसूक्त से करें तथा घृत का संस्कार तापन एवं उद्धरण विधि से कर ॐकार का उच्चारण करते हुए स्रुक् और स्रुव का संस्कार करें।

गर्भाधानादिकं वह्नेर्विवाहान्तं समाचरेत्।
अष्टावष्टौ च तारेण चेकैकस्य तु कर्मणः।।53।।

तब अग्नि के गर्भाधान से विवाह पर्यन्त की विधि करें। इनमें आठ आठ बार ॐकार का उच्चारण प्रत्येक विधि में करें।

जुहुयादर्चिते वह्नौ वौषडन्तं समाप्य च।
कर्मान्तरं समारभ्य तदप्येवं समापयेत्।।54।।

इस प्रकार पूजित अग्नि में वौषट् से समाप्त कर हवन करें। अन्य कर्म भी प्रारम्भ कर इसी प्रकार समाप्त करें।

एवमग्नौ सुसम्पन्ने वैष्णवं स्रपयेच्चरुम्।
इध्माधानादग्निमुखावाज्यभागौ जुहुयात् पुनः।।55।।

इस प्रकार सम्यक् प्रकार से अग्नि-पूजन समाप्त कर विष्णु को समर्पित करने योग्य चरु पकायें। तब अग्नि का आधान से अग्निमुख कर्म पर्यन्त कर दोनों आज्यभाग हवन करें।

साङ्गावाहनमन्त्राग्नौ पूजयेद्रघुनन्दनम्।[3]
समिदाज्यचरूणां च प्रत्येकं षोडशाहुतीः।।56।।
जुहुयान्मूलमन्त्रेण परिवारेभ्य एव च।
तिस्रो विनायकादिभ्यः सर्वेभ्योऽप्याहुतीर्मुने।।57।।

1. घ. ब्राह्मणोऽर्चयेत्। 2. घ. कामं। 3. घ. पूजयेद्रघुनायकम्

मूल मन्त्र से परिवार देवताओं को आहुति देकर गणेश आदि सभी देवताओं को आहुति दें।

द्वाराङ्गपरिवारेभ्यः सुरेभ्यो जुहुयात्पुनः।
हुत्वाज्येनाहुतीस्तत्तत् प्रदद्यात्तत्तदाप्तये।।58।।

द्वारदेवता, अंगदेवता, परिवार देवता एवं अन्य देवताओं को भी आहुति देकर पुनः घृत से उन उन देवताओं की कृपा पाने के लिए आहुतियाँ दें।

तत्तद्द्रव्यैश्च जुहुयात् सर्वं चारुमनोहरैः।
द्वारपीठसुरेभ्यश्च हुत्वादौ जुहुयात्ततः।।59।।
अङ्गादिवैष्णवान्तेभ्यः तिस्त्र आज्याहुतीः पृथक्।

देवताओं के लिए विहित उन मनोहर द्रव्यों से द्वारदेवता एवं पीठदेवता को आहुति देकर तब हवन करें। अङ्ग देवताओं से आरम्भ कर विष्णु-भक्तों तक तीन तीन आहुतियाँ पृथक् पृथक् दें।

ततः स्विष्टकृतं हुत्वा घृतेन मुनिसत्तम।।60।।
जलेन विधिना सम्यक् परिषिञ्च्य[1] समं ततः।

हे मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! तब स्विष्टकृत् होम घृत से करें और विधानपूर्वक जल से परिषेचन करें।

प्रणीतामार्जनं कृत्वा दद्याच्च ब्रह्मदक्षिणाम्।।61।।
स्वस्ववित्तानुसारेण लोभमोहविवर्जितः।
ततो ब्रह्माणमुद्वास्य ब्राह्मणान्भोजयेत्तथा।।62।।

प्रणीतापात्र को खँघाल कर अपने विभव के अनुसार लोभ और मोह का परित्याग करते हुए ब्रह्मा को दक्षिणा दें। तब ब्रह्मा को विसर्जित करें और ब्राह्मणों को भोजन कराएँ।

अग्निमध्यगतं देवं पुनः स्वात्मनि योजयेत्।
एकीभूतं विचिन्त्येव वाचयेत् स्वस्तिवाचनम्।।63।।
आशीर्वचोभिर्विदुषामेध्यमानः सुखी भवेत्।

तब अग्नि के मध्य में स्थित देव श्रीराम का आधान अपने हृदय में करें और श्रीराम के साथ एकाकार हो जाने का चिन्तन करें। तब स्वस्तिवाचन कराएँ। विद्वानों के आशीर्वचन से यजमान वृद्धि करता हुआ सुखी रहता है।

1. घ. चाभिषिञ्च्य।

हुतशेषं ततः प्राश्य कुक्कुटाण्डप्रमाणकम्।।64।।
मन्त्रितं रामगायत्र्या ततस्तस्मै बलिं हरेत्।
सन्निधावपि देवस्य बाह्यान्तर्दिक्षु चान्धसा।।65।।

तब हवन करने से शेष बचे पदार्थ में से मुर्गी के अंडे बराबर मात्रा में लेकर रामगायत्री से अभिमन्त्रित कर भक्षण करें। तब देवता के समीप, बाहर-भीतर एवं सभी दिशाओं में लिए भात (अन्धस्) से बलि दें।

नित्ये नैमित्तिके काम्येऽप्येतदग्निमुखं स्मृतम्।
सर्वत्राभ्युदयश्राद्धमङ्कुरारोपणं तथा।
आदावन्ते प्रकुर्वन्ति कर्माण्यभ्युदयार्थिनः।[1]।66।।

नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य तीनों कर्मों में इस प्रकार हवन स्मृतियों में कहा गया है। इन सभी कर्मों के आरम्भ एवं अंत में आभ्युदयिक श्राद्ध और अंकुरारोपण भी उन्नति के आकांक्षियों के लिए स्मृत है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये कुण्डमान-
होमान्तादिविधिप्रकरणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।14।।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अथ प्रयोगं[2] वक्ष्यामि चतुर्णामिष्टदं[3] मुने।
मन्दभाग्योऽपि येनेष्टमायासेनैति वांछितम्।।1।।

अगस्त्य बोले- हे मुनि सुतीक्ष्ण, अब चारो वर्णों को वांछित फल देने वाला प्रयोग बतलाता हूँ, जिसे करने मन्दभाग्य भी इच्छित वस्तु प्राप्त कर लेता है।

निधाय विधिवत्सम्यगग्निभागान्तमुक्तवत्।
ततोऽग्नौ देवमावाह्य पूजयेदुपचारकैः।।2।।
पञ्चभिर्वा षोडशभिः पूज्योपकरणैः पृथक्।
पलाशाश्वत्थखदिरोदुम्बराम्रवटेन्धनैः ।।3।।
अग्निं प्रज्वालयेत् सम्यग्याज्ञिकैर्वाथ वेन्धनैः।
तत्रैव पूजयेत् सम्यग् जुहुयादपि राघवम्[4]।।4।।

1. घ. कर्मणोऽभ्युदयार्थतः। 2. घ. प्रयोगान्।3. घ. चतुर्णामिष्टदान्। 4. घ. माधवम्।

लक्षं तदर्द्धमथवा जपित्वा तद्दशांशतः।
तिलैर्वामलकैर्हुत्वा[1] यद्यदिष्टं तदश्नुते।।5।।

विधानपूर्वक पीछे कही गयी विधि से होमकर्म पर्यन्त कर अग्नि में देवता का आवाहन कर पाँच या सोलह उपचारों से पृथक्-पृथक् पूजा कर पलाश, पीपल, खैर, गूलर, आम, बड़, या अन्य यज्ञीय की समिधा से अग्नि प्रज्वलित करें। वहीं 'श्रीराम की पूजा सम्यक् रूप से कर एक लाख अथवा पचास हजार जप कर उसका दशांश हवन करें। तिल से अथवा आँवला से हवन कर अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है।

बिल्वप्रसूनैरैश्वर्य्यमर्चितेऽग्नौ हुतैर्भवेत्।
पलाशकुसुमैर्हुत्वा मेधावी वेदविद् भवेत्।।6।।
दूर्वाभिश्च गुडीचीभिः[2] प्रत्येकमपि चाक्षतैः।
निरामयोऽपि दीर्घायुर्भवत्येव तपोधन[3]।।7।।

पूजित अग्नि में बेल के फूल से हवन करने पर ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। पलाश के फूल से हवन कर वह मेधावी और वेद ज्ञानी होता है। दूर्वा या गुरुच के साथ अक्षत मिलाकर हवन करने से यजमान नीरोग और दीर्घायु होते हैं।

सम्यक् चन्दनतोयेन प्रत्यग्रैश्च समुक्षितैः।
जातीप्रसूनैर्हुत्वा तु राजानं वशमानयेत्।।8।।

चन्दन के जल से सुगन्धित खिलेहुए तथा उचित रीति से तोड़े गये ताजे जूही के फूल से हवन कर राजा को वश में करे।

ध्यात्वा च मन्मथं रामं[4] सीतामपि रतिं स्मरेत्।
सर्ववश्यप्रयोगेषु जपहोमादिकर्मसु।।9।।

श्रीराम का कामदेव के रूप में तथा सीता को रति के रूप में सभी वशीकरण के प्रयोग में, जप होम आदि में स्मरण करें।

रामं नवोपयन्तारं स्मरेणाराध्य[5] भक्तितः।
उपैति सदृशीं कन्यां लाजहोमेन साधकः।।10।।

कामबीज (क्लीं) से नव विवाहित श्रीराम की भक्तिपूर्वक आराधना कर धान के खील से हवन करने से साधक श्रीसीता के समान कन्या पत्नी के रूप में प्राप्त करता है।

---

1. घ. कमलैर्हुत्वा। 2. घ. गुलूचीभिः। 3. घ. तपोनिधे। 4. घ. ध्यात्वापि राघवं कामं।5. घ. स्मरन्नाराध्य।

वाञ्छितं फलमाप्नोति हुत्वा रक्तोत्पलैर्नवैः।
हुत्वा नीलोत्पलैः सम्यग् वशयेदखिलं जगत्।।11।।

ताजे लाल कमल से हवन कर इच्छित फल प्राप्त करता है तथा नीलकमल से हवन कर समग्र संसार को वश में करता है।

रामं विधिवदाराध्य ज्वलितेग्नौ प्रयोगवित्।
मधुरत्रययुक्तेन पायसेन हुतेन तु।।12।।
सर्वाधिपत्यं वैदुष्यं भवत्येव न संशयः।
तिलैश्च तण्डुलैराज्यैर्हुत्वा लोकस्य पूज्यताम्।।13।।

प्रज्वलित अग्नि में श्रीराम की विधिपूर्वक आराधना कर प्रयोग जानने वाला तीन मधुर (मधु, गुड़ एवं मिसरी) मिले खीर से हवन कर सभी पर आधिपत्य और वैदुष्य प्राप्त करता है और तिल, चावल एवं घृत से हवन कर संसार में पूजित होता है।

आराध्य वत्सरं यावत्[1] षट्सहस्रं दिने दिने।
जपेच्च जुहुयादग्नौदशांशं तद्वतान्धसा।।14।।
अयमेवान्नदो लोके सर्वेषामपि जायते।
बिल्वप्रसूनैः कुमुदैस्तथा बिल्वदलैरपि।।15।।
हुत्वा स लभते लक्ष्मीमचिरान्मन्त्रसाधकः।

प्रतिदिन छह हजार मन्त्र का जप कर अग्नि में पूर्वोक्त विधि उससे युक्त भात (अन्धस्) से दशांश हवन करें। यहीं इस संसार में सबके लिए अन्न देने वाला प्रयोग है। बेल का फूल, कुमुद तथा बिल्वपत्र से हवन कर मन्त्रसाधक शीघ्र लक्ष्मी प्राप्त करता है।

आराध्य रामं चण्डांशुमण्डले वत्सरं मुने।।16।।
उदयास्तमने तं च जपेद्राममन्त्रमनन्यधीः।[2]
फलं भवति तस्याशु देवानामपि दुर्लभम्।।17।।
वैदुष्येणाधिपत्येन सभ्यानामुत्तमो[3] भवेत्।
पूर्णिमासु निशीथिन्यामुदयास्तमयव्रतम्।।18।।

---

1. घ. आरात् संवत्सरं यावत्। 2. घ. उदयास्तमनं यावत् जपेन्मन्त्रमनन्यधीः। 3. घ. समानामुत्तमो।

संवत्सरं प्रकुर्वीत जपहोमादिकं विभोः।
रात्रौ जपेद्दिवा होमं कुर्यादिवापरेऽहनि।।19।।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु व्रतमेतत् समापयेत्।
सोमसूर्यात्मकं यस्तु व्रतं कुर्वीत मानवः।।20।।
इह भुक्तिं च मुक्तिञ्च लभते नात्र संशयः।

एक वर्ष तक सूर्य के प्रभामण्डल में उदय और अस्त के समय श्रीराम की आराधना कर एकाग्रचित्त होकर श्रीराम के मन्त्र का जप करे, तो इसका जो फल शीघ्र उसे मिलता है, वह देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। वह विद्वत्ता और आधिपत्य से सभा में स्थित लोगों में श्रेष्ठ हो जाता है। साथ ही पूर्णिमा की रात में चन्द्रोदय एवं चन्द्रास्त के समय यह व्रत जप, होम आदि विधि में वर्ष पर्यन्त करे। रात्रि में जप कर दूसरे दिन हवन करे; ब्राह्मण भोजन कराकर यह व्रत जो मनुष्य करे, वह इस संसार में भोग और मुक्ति प्राप्त करे, इसमें सन्देह नहीं।

रक्तपद्मैश्च बन्धूकैस्तथा रक्तोत्पलैरपि।।21।।
अभीष्टलोकवश्यार्थो जुहुयादर्चितेऽनले।

लाल कमल, बन्धूक (दुपहरिया फूल) और लाल उत्पल से अभीष्ट व्यक्ति के वशीकरण के लिए पूजित अग्नि में हवन करें।

राज्यैश्वर्य्योपभोगार्थी गिरौ[1] लक्षमनन्यधीः।।22।।
पद्मैर्बिल्वप्रसूनैर्वा दशांशं जुहुयान्मुने।

राज्य और ऐश्वर्य के उपभोग का इच्छुक एकचित्त होकर पर्वत पर लाख जप कर लाल कमल या बिल्वपुष्प से दशांश हवन करे।

समुद्रतीरे गोष्ठे वा लक्षजापी पयोव्रतः।।23।।
पायसेनाज्ययुक्तेन हुत्वा विद्यानिधिर्भवेत्।

समुद्र के तट पर अथवा गाय के घर में केवल दूध पीकर एक लाख जप कर धृत डालकर पायस से हवन कर विद्वान् होता है।

परिक्षीणाधिपत्यो[2] यः शाकाहारी जलान्तरे।।24।।
जपेल्लक्षं च जुहुयाद् बिल्वपत्रैर्दशान्ततः।
तदेव पुनरायाति स्वाधिपत्यं न संशयः।।25।।

1. घ. जपेत्। 2. घ. परिक्षताधिपत्यो।

राज्यच्युत व्यक्ति यदि केवल साग खाकर जल में खड़ा होकर एक लाख जप करे और बिल्वपत्र से दशांश हवन करे, तो उसका शासन पुनः लौट आता है; इसमें सन्देह नहीं।

उपोष्य गङ्गादिजलान्तरस्थो
रामं समाराध्य जपेच्च लक्षम्।
हुत्वा दशांशं कमलैस्तिलैर्वा
बिल्वप्रसूनैर्मधुरत्रयाक्तैः ।।26।।
राज्यश्रियं विन्दति मन्दभाग्योऽ-
प्यमुष्य दास्यं वरवाञ्छितं स्यात्।
[1]वैदुष्यमिष्टञ्च सुतादिलाभो
युद्धे जयः सर्व्वसमृद्धिवृद्धिः।।27।।

गंगा आदि पवित्र नदी के जल में उपवास करते हुए खड़ा होकर श्रीराम की आराधना कर एक लाख जप करे और तीन मधुर से युक्त तिल अथवा बिल्वपत्र से दशांश हवन करे, तो मन्दभाग्य को भी श्रीराम की दासता और इच्छित वर मिले।

राममाराध्य विधिवदर्चितेऽग्नौ जपेदपि।
सूर्यबिम्बेऽपि तोयस्थो जुहुयादिक्षुदण्डकैः।।28।।
राज्यलक्ष्मीमवाप्नोति शरत्काले तपोधन।।29।।

जल में खड़ा होकर सूर्य विम्ब में श्रीराम की विधिवत् आराधना कर जप भी करे और शरद् ऋतु में पूजित अग्नि में ईख के टुकड़े से हवन भी करे तो हे तपोधन! सुतीक्ष्ण! वह राज्यलक्ष्मी प्राप्त करता है।

वैशाखे राघवं सूर्ये सम्पश्यन्ननिमेक्षणः।
निराहारो जपेल्लक्षं मौनी पञ्चाग्निमध्यतः।।30।।
दशांशं कमलैर्हुत्वा सार्वभौमो भवेद् ध्रुवम्।

वैशाख मास में निराहार रहकर, मौन धारण कर, पंचाग्नि व्रत करते हुए (चारो ओर अग्नि जलाकर तथा पाँचवें सूर्य को देखते हुए) सूर्य में श्रीराम को अपलक देखते हुए एक लाख मन्त्र का जप करे और उसका दशांश कमल से हवन कर निश्चय सार्वभौम बन जाता है।

---

1. क. यहाँ से दो चरण अनुपलब्ध।

माघमासे जले स्थित्वा कन्दमूलफलाशिनः[1]।।31।।
जपेल्लक्षं च जुहुयात् पायसेनार्चितेऽनले।
दशांशं पुत्रपौत्राय[2] तच्छेषं प्राशयेत् प्रियाम्।।32।।
श्रीरामसदृशः पुत्रः पौत्रौ वाप्यस्य जायते।

माघ मास में कन्द, मूल, फल खाकर व्रत करते हुए जल में खड़ा होकर जो लाख जप करे और पूजित अग्नि में पायस से दशांश हवन करे और पुत्र पौत्र आदि की प्राप्ति के लिए आहुति शेष पत्नी को विधिपूर्वक खिलावे तो श्रीराम के समान पुत्र अथवा पौत्र प्राप्त होता है।

बलिष्ठैः शत्रुभिर्मन्त्री परिभूतोऽवमानितः।।33।।
तदा हनहनेत्युक्त्वा नामान्ते वैरिणो जपेत्।
ध्यात्वा रघुपतिं क्रुद्धं कालानलमिवापरम्[3]।।34।।
आकर्णान्तिशराकृष्टकोदण्डभुजमण्डलम्।
रणाङ्गणे रिपून् सर्वांस्तीक्ष्णमार्गणवृष्टिभिः।।35।।
संहरन्तं महावीरमुग्रमैन्द्ररथस्थितम्[4]।
लक्ष्मणादिमहावीरैर्युतं हनुमदादिभिः।।36।।
कोटिकोटिमहावीरैः शैलवृक्षकरोद्धतैः।
वेगात् करालहुङ्कारभौभौकारमहारवैः।।37।।
नदद्भिरभिधावद्भिः समरे रावणं प्रति।
एवं ध्यात्वा निराहारो मारणाय[5] रिपोः पुनः।38।।
जुहुयात् शाल्मलीपुष्पैर्दशांशं मन्त्रसाधकः।
अत्यैश्वर्यसमृद्धोऽपि[6] न शत्रुरवशिष्यते।।39।।

यदि मन्त्र साधक शक्तिशाली शत्रु से हारकर अपमानित हुआ हो तो 'हन हन' यह कहकर शत्रु का नाम अन्त में जोड़कर जप करे। जो श्रीराम क्रोधित हैं, दूसरे कालाग्नि के समान हैं, कान तक खिंचे हुए बाण वाले धनुष हाथ में धारण किए हुए हैं तथा युद्ध-क्षेत्र में तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से सभी शत्रुओं का संहार करनेवाले हैं; इन्द्र के रथ पर स्थित हैं। वे लक्ष्मण, हनुमान आदि महान् वीरों से घिरे हुए हैं तथा चट्टानों और वृक्षों को लेकर उठे हाथ वाले, हुंकार करते हुए युद्ध

1. घ. फलाशनः। 2. घ. पुत्रपौत्रास्यै।3. घ. कालाग्निमुव चापरं। 4. घ. महावीरं राममुग्ररथस्थितम्। 5. घ. मरणाय। 6. घ. राज्यैश्वर्य०

में रावण की ओर दौड़ते हुए "भौ भौ" शब्द करते हुए करोड़ों करोड़ो महान् वीरों से भी घिरे हुए हैं। ऐसे श्रीराम का ध्यान कर शत्रु को मारने के लिए सेमल के फूल से दशांश हवन करे। इससे अत्यन्त ऐश्वर्य प्राप्त होता है और शत्रु शेष नहीं रहता।

वैरिणं रावणं ध्यात्वा तथात्मानं रघूद्वहम्।
विधाय पूर्ववत्सर्वमनायासेन मारयेत्।।40।।
येनैव संहृतः[1] कोपात् स यात्येव यमालयम्।

रावण के रूप में शत्रु का ध्यान कर स्वयं को श्रीराम मानकर पूर्वोक्त विधि से जप आदि सब कुछ कर सभी शत्रुओं का अनायास मारण करे। क्रोध से जिस पर सन्धान किया जाए वह यमलोक पहुँच जाता है।

सीताहरणशोकाब्धिस्तम्भीभूतमचेतनम्[2] ।।41।।
जपेद् रघुपतिं ध्यायन् निराहारो जले वसेत्।
दशांशतस्तिलैर्हुत्वा स्तम्भयेच्छत्रुसंहतिम्।।42।।

सीता के अपहरण के कारण शोक रूपी समुद्र में स्तब्ध चित्त वाले श्रीराम का ध्यान करते हुए निराहार रहकर जल में अवस्थित होकर जप करें। उसका दशांश तिल से हवन कर शत्रु के समूह का वह स्तम्भन करे।

निधाय वायुबीजान्ते तन्नाम भ्रामयेति च।
जपेल्लक्षं निराहारो जुहुयाच्च तिलैरपि।।43।।
रामं ध्यात्वा विषण्णञ्च सीतान्वेषणकातरम्।
भ्रामयस्यचिरं साक्षाद्धेमाद्रिमपि वैरिणम्।।44।।

मन्त्र के अन्त में वायु वीज (वं) लगाकर अभीष्ट व्यक्ति का नाम बोलकर 'भ्रामय' यह कहे। इस प्रकार निराहार रहते हुए एक लाख जपकर तिल से हवन करें। इस पुरश्चरण में विषादग्रस्त और श्रीसीता की खोज में व्याकुल श्रीराम का ध्यान करे तो वह साक्षात् सुमेरु के समान दृढ़ शत्रु का भी 'भ्रामण' करे।

समुद्रतीरे लङ्कायां हैमप्राकारसन्निधौ।
सुग्रीवादिभिरन्यैश्च देवैर्जाम्बवदादिभिः।।45।।
उपास्यमानं सदसि ध्यात्वा रामं सलक्ष्मणम्।

1. घ. तेनायं संहतः। 2. घ. स्तब्धीभूत°।

विभीषणायायाचिते प्रसन्नं शरणार्थिने।।46।।
वरदं तु जपेल्लक्षं जुहुयात्पङ्कजैरपि।
स्वस्थानमानयेच्छीघ्रं राजानमथवा प्रभुम्।।47।।

समुद्र के तट पर, लंका में, सोने की अट्टालिका के समक्ष, सुग्रीव जाम्बवान् आदि से घिरे हुए, सभा में आराधित, ऐसे श्रीराम और लक्ष्मण का ध्यान करें, जिनसे विभीषण याचना कर रहे हों और जो शरण चाहनेवालों पर प्रसन्न हों। इस प्रकार ध्यान कर एक लाख जप करें और कमल के फूल से हवन करें, तो अपने निवास स्थान पर राजा अथवा प्रभु का आकर्षण कर लाने में समर्थ हों।

निमील्य चक्षुषी स्नेहादुपलाप्य पुनः पुनः।
प्रमोदयन्तं सहसा मोदन्तं मैथिलीं प्रियाम्।।48।।
रामं ध्यात्वा जपेल्लक्षं हुत्वा रक्ताम्बुजैरपि।
सम्मोहयति वेगेन राजानमथवा प्रभुम्।।49।।

दोनों आँखें बन्द कर स्नेहपूर्वक बार बार आलाप कर प्रिया सीता को वरवस प्रफुल्लित करते हुए स्वयं भी प्रसन्न श्रीराम का ध्यान कर लाख मन्त्र जपें और लाल कमल से हवन कर शीघ्र ही राजा अथवा प्रभु को सम्मोहित करता है।

सुतीक्ष्णमुनिवर्यात्र षट्प्रयोगप्रदर्शनम्।
सर्वाभीष्टार्थतत्त्वस्य द्योतनाय मनोः पुनः।।50।।
नैव कर्त्तव्यमित्येव मुक्तिर्दूरतरा[1] यतः।
किञ्च प्रयोगकर्तृणां परलोको न विद्यते।।51।।

हे मुनि सुतीक्ष्ण! यहाँ मैंने सभी अभीष्ट तत्त्वों को स्पष्ट करने के लिए छह प्रयोगों का प्रदर्शन किया फिर कहता हूँ कि इन्हें करना नहीं चाहिए; क्योंकि इससे मुक्ति दूर चली जाती है साथ ही, प्रयोग करनेवालों को परलोक नहीं मिलता।

प्रयोगसिद्धिरेतेषां फलं नान्यद् भवत्यपि।
नैष्कामानां तु भक्तानां जपहोमादिकर्मसु।।52।।
मुक्तिरेव फलं तेषामिह किञ्चिन्न विद्यते।
एकैकस्य विधानस्य न कुत्रापि फलद्वयम्।।53।।

---

1. घ. मुक्तिर्भारतरा।

इनके करने से प्रयोगों की ही सिद्धि होती है; अन्य फल उन्हें नहीं मिलता। किन्तु निष्काम भक्तों का जप, होम आदि कर्मों में मुक्ति ही फल होता है; उन्हें इस संसार में कुछ नहीं मिलता क्योंकि एक विधि के कहीं भी दो फल नहीं हो सकते।

सुतीक्ष्ण दृश्यते तस्मानिष्कामो राममर्चयेत्।
विद्वान् ब्रह्मास्त्रमादाय शशादौ न विमोचयेत्।[1]
नायं मुक्तिपदो मन्त्रो मारणादौ प्रयुज्यताम्।।54।।

इसलिए हे सुतीक्ष्ण! इस प्रकार स्पष्ट है कि कामना रहित होकर ही श्रीराम का अर्चन करना चाहिए। विद्वान् ब्रह्मास्त्र लेकर खरगोश पर न छोड़ें। मुक्ति प्रदान करनेवाला षडक्षर राम-मन्त्र का मारण आदि के लिए प्रयोग न करें।

इत्यगस्त्यसंहितापरमरहस्ये प्रयोगविधिर्नाम
पञ्चदशोऽध्यायः।

अथ षोडशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अथ वक्ष्ये विधानानि पौरश्चरणिके विधौ।
विना येन न सिद्धः स्यान्मत्रो वर्षशतैरपि।।1।।

अगस्त्य बोले- अब पुरश्चरण की विधि के विधानों को कहता हूँ, जिनके विना मन्त्र की सिद्धि सौ वर्षों में भी नहीं होगी।

भक्तिश्रद्धेष्टदानानि चिरोपास्ति प्रसादितात्।
गुरोर्मन्त्रं वरं लब्ध्वा सर्वाभीष्टप्रदं बुधः।।2।।
पूर्ववत् पूजयेन्नित्यं जपेत नियतव्रतः।
षट्सहस्रं सहस्रं वा शतं वाष्टोत्तरं शुचिः।।3।

1. घ. ब्रह्मन् ब्रह्मास्त्रमादाय शशादौ न विमोचय।

भक्ति, श्रद्धा और इच्छित दान कर चिरकाल तक की उपासना (सेवा) से प्रसन्न किये हुए गुरु से सभी इच्छाओं की पूर्ति करनेवाला मन्त्रश्रेष्ठ षडक्षर मन्त्र का ग्रहण कर योग्य साधक पूर्वोक्त विधि से नित्य पूजन करें और नियमों का पालन करते हुए पवित्र होकर प्रतिदिन छह हजार, एक हजार अथवा एक सौ आठ बार जप करें।

एवमाराधितो रामः परां[1] भक्तिं प्रबोधयेत्।
पुरश्चरणकृत्याय पूर्वमेवं विधीयते।।4।।

इस प्रकार आराधित श्रीराम परम भक्ति जगाते हैं। पुरश्चरण के लिए इस प्रकार पूर्वकृत्यों का विधान किया जाता है।

यथाशक्ति नियम्यान्ते बहिरात्मानमात्मवित्।
पुरश्चरणवत्सर्वं कुर्याद् होमं विधानतः[2]।।5।।
ततः संकल्प्य कुर्वीत पुरश्चरणमादरात्।
चिरं निरन्तरेणैव नियतात्मा दृढव्रतः।।6।।

आत्मज्ञानी यथाशक्ति प्राणायाम कर बाह्य और अन्तःशुद्धि पुरश्चरण की विधि के समान करें। तब विधानपूर्वक हवन करें। इसके बाद संकल्प कर आदर भाव से अधिक दिनों तक लगातार एकाग्र भाव से दृढ़तापूर्वक नियमों का पालन करते हुए पुरश्चरण करें।

शैलाग्रे जलमध्ये वा तीरे वा लवणाम्बुधेः।
नदीतीरेऽश्वत्थमूले रम्ये बिल्ववनान्तरे।।7।।
प्रत्यङ्मुखशिवस्थाने वृषभादिविवर्जिते।
अश्वत्थबिल्वतुलसीवने पुष्पान्तरावृते।।8।।
गवां गोष्ठेषु तीर्थेषु पुण्यक्षेत्रेषु शस्यते।

यह पुरश्चरण पर्वत शिखर पर, जल में, समुद्र के तट पर, नदी के तट पर, पीपल वृक्ष की जड़ में, बेल के रमणीय वन में, पूर्वाभिमुख शिवालय में जहाँ वृषभ आदि न हों, पीपल, बेल तुलसी के वन में जहाँ अन्य फूलों के वृक्ष हों, गाय के घर में, तीर्थों में और पुण्यस्थानों में पुरश्चरण प्रशस्त है।

वैदिकाचारयुक्तानां श्रुतानां श्रीमतां सताम्।।9।।
स्वकुलस्थानजातानां[3] भिक्षाशी चाग्रजन्मनाम्।

1. घ. यदा। 2. घ. विधाय तत्। 3. घ. सत्कुलस्थानजातानां।

भुञ्जानो वा हविष्यान्नं शाकं यावकमेव वा।।10।।
पयो मूलं फलं वापि यत्र कुत्रोपलभ्यते।[1]

वैदिक आचार से युक्त, वेदज्ञानी, धनवान्, सज्जन, अपने कुल के निवास स्थान में उत्पन्न, ब्राह्मणों के घर से मिली भिक्षा का भोजन करता हुआ, हविष्यान्न, शाक अथवा यव का सत्तू, दूध, कन्द-मूल, जो अनायास उपलब्ध होते हैं, उनका भोजन करना चाहिए।

धूपस्तथाभिधार्य्यैतत्[2] संस्कृत्य प्रोक्षणादिभिः।।11।।
वाचयेद् वैदिकैर्मन्त्रैः पुनर्मन्त्रेण मन्त्रवित्।[3]
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं[4] कुर्वीतैवाश्रमोदितम्।।12।।
वर्जयेत् काम्यकर्माणि स्वाश्रमाविहितं च यत्।

पुरश्चरण के लिए धूप जलाकर प्रोक्षण आदि से संस्कार कर वैदिक मन्त्र से स्वस्तिवाचन करें, तब षडक्षर मन्त्र का जप करें। नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्म जो अपने आश्रम के लिए विहित हो उसे करें। अपने आश्रम के लिए निषिद्ध जो काम्य कर्म हो, उसका त्याग करना चाहिए।

लवणं च फलं वापि क्षारं क्षौद्रं रसान्तरम्।।13।।
माषमुद्गमसूराद्यान् कोद्रवांश्चणकानपि।
असद्भाषणमन्योन्यं वर्जयेदन्यपूजनम्।।14।।

नमकीन फल, मधु, खारा स्वाद युक्त भोजन एवं अन्य रस, उड़द, मसूर, मूँग, कोदो एवं चना का भक्षण न करें। परस्पर मिथ्या भाषण तथा अन्य देवता की पूजा त्याग दें।

तदेव कर्म कुर्वीत तन्मनास्तत्परायणाः।
अधःशयानः शुद्धात्मा जितक्रोधो जितेन्द्रियः।।15।।
लघुमृष्टहिताशी च विनीतः शान्तचेतनः।
दान्तस्त्रिसवनास्नायी मौनी सम्मानितं मतः[5]।।16।।

भूमि पर शयन करते हुए आत्मा को शुद्ध कर, क्रोध पर काबू पाकर, इन्द्रियों को जीतकर उसी देवता का ध्यान करते हुए, एकाग्रचित्त होकर कम मात्रा में पवित्र और शरीर के लिए पथ्य भोजन करते हुए, विनयी, शान्त चित्त, उदात्त

---

1. घ. यदुपलभ्यते। 2. घ. उपस्तीर्याभिधार्य्यैतत्। 3. घ. पावयेद् वैष्णवैर्मन्त्रैः पुनर्मूलेन मन्त्रवित्।4. घ. यद्यत्।5. घ. सम्मानितान्तरः।

विचारों से ओतप्रोत, तीनों सन्ध्याओं, प्रातः, मध्याह्न एवं सायं में स्नान करनेवाले, मौन धारण करनेवाले तथा सम्मानित साधक पुरश्चरण के योग्य माने जाते हैं।

स्त्रीशूद्रपति तव्रात्यनाग्निकोच्छिष्टभाषणम् ।
अन्यत्संभाषितं[1] जिह्मभाषणं परिवर्जयेत्।।17।।

स्त्री, मूर्ख, पतित, कर्मच्युत, नास्तिक के साथ तथा जूठे मुँह से संभाषण का त्याग करें, अप्रत्यक्ष व्यक्ति के प्रति भाषण, कुटिल भाषण का त्याग करें।

सभ्यैरपि न भाषेत जपहोमार्चनादिषु।
यदि[2] भाषेत तत्काले सभ्यैः प्रस्तुतसाधकम्।।18।।
अन्यथानुष्ठितं[3] सर्वं भवत्येव निरर्थकम्।

जप, होम, अर्चना आदि के बीच सभ्यों के साथ भी बातचीत न करें। यदि इस बीच उपस्थित कार्य का साधक भाषण करते हैं, तो सभी अनुष्ठान व्यर्थ हो जाते हैं।

वाङ्मनःकर्मभिर्नित्यमस्पृहो वनितादिषु।।19।।
वर्जयेद् गीतकाव्यादिश्रवणं नृत्यदर्शनम्।
ताम्बूलं गन्धलेपञ्च पुष्पधारणमेव च।।20।।
मैथुनं तत्कथालापं तद्गोष्ठीरपि वर्जयेत्।
कौटिल्यं क्षीरमभ्यङ्गमनिवेदितभोजनम्।।21।।
असंकल्पितकृत्यं च वर्जयेन्मर्दनादिकम्।
त्यजेदुष्णोदकस्नानं सुगन्धामलकादिकम्।।22।।

वाणी, मन एवं कर्म से स्त्री आदि में अनासक्त रहें। गीत, काव्य आदि सुनना, नाच देखना, पान खाना, सुगन्धित लेप लगाना, फूल धारण करना, मैथुन, उसकी कथा, आलाप, श्रृंगारिक गोष्ठी, आदि भी छोड़ दें। कुटिलता, दुग्धपान, तेल मलना, देवता को समर्पित किए विना भोजन, संकल्प के विना कोई कर्म और मालिश आदि छोड़ दे। गर्म दूध तथा सुगन्धा, आँवला आदि से स्नान करना भी छोड़ दें।

शिरोरुहं[4] पञ्चगव्येन पावयेद् बहिरन्तरम्।
स्नायाच्च पञ्चगव्येन केवलामलकेन वा।।23।।

---

1. घ. असत्यभाषणं। 2. घ. यद्यत्। 3. घ. अन्यथाभाषितं।4. घ. शिरोहं, क. शिरोगं।

श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तमन्त्रैः स्नायादनन्तरम्।
अनुतिष्ठेदनुष्ठेयं शुचिव्रततपोऽनिशम्।।24।।

शिर के बाल को पंचगव्य से भीतर बाहर पवित्र करें। पंचगव्य से अथवा केवल आँवले के रस से स्नान करें। इसके बाद वेद, स्मृति, पुराण में कहे गये मन्त्र से स्नान करें। पवित्रता और नियम से दिन रात तप करते हुए अनुष्ठान करें।

सितैकविधं हेमन्ते शाल्यन्नं स्वीयसञ्चितम्[1]।
आशुद्धानिर्हतं प्राद्यादनुतिलमाहृतं च यत्[2]।।25।।
दधिक्षीरघृतं गव्यं ऐक्षवं गुडवर्जितम्।
तिलाश्चैव सिता मुद्गा कन्दः केमुकवर्जितम्।।26।।
नारिकेलफलं वापि कदली लवली तथा।
आम्रमामलकं चैव पनसार्द्रं हरीतकी।।27।।
व्रतान्तरप्रशस्तं च हविष्यं मन्यते बुधः।
अवैष्णवमसभ्यं वै यत्प्रशस्तं व्रतान्तरे।।28।।
त्याज्यमेवात्र तत्सर्वं यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः।[3]

एक एक कण करके स्वयं संचित किया हुआ श्वेत रंग के, एक प्रकार के अगहनी धान का चावल, जो सर्वथा शुद्ध हो और पैरों से मसला न गया हो, भोजन करें। गाय का दही, दूध एवं घी, गुड़ को छोड़कर ईख से प्राप्त पदार्थ, सफेद तिल, उजला मूँग, केमुक अर्थात् अरुइ अथवा पेंची से भिन्न कन्द, नारियल का फल, केला, लवली, आम, आँवला, कटहल, आदि, हर्रे तथा अन्य व्रतों में जो भोज्य पदार्थ प्रशस्त माने गये हैं वे हविष्यान्न हैं। किन्तु जो विष्णु को समर्पित न किये गये हों, भले लोग न खाते हों वे हविष्यान्न नहीं हैं। यदि अपनी सिद्धि चाहते हों, तो ऊपर कही गयी त्याज्य वस्तुओं का त्याग करें।

जपे तु[4] वैष्णवं कर्म स्थिरधीः कर्त्तुमास्थितः।
जपेच्च नियतो नित्यं त्रिकालं पुरुषोत्तमम्।।29।।

जप में विष्णु-परम्परा के कर्म करने के लिए स्थिरचित्त होकर बैठकर प्रतिदिन, नियमपूर्वक पुरुषोत्तम श्रीराम का जप प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्या में करें।

क्षमाहिंसादयाशीलो गृहीतस्थिरनिश्चयः।।30।।
अर्चयन् राममव्यग्रो[5] यावत् षड्लक्षमादितः।[6]

1. घ. स्वीयसम्भूतम्। 2. घ. अशूद्रावहतं प्राद्यादन्यतो नाहृतं च यत्। 3. घ. सिद्धिमुत्तमाम्।4. घ. यजेत।5. घ. अर्चयन्नेव चाव्यग्रो।6. घ. षड्लक्षमादरात।

तर्पयेच्च विधानेन दशांशं शुद्धवारिणा।।31।।
पुष्पाक्षतादियुक्तेन जले रांपूज्य पूर्ववत्।
ततो बिल्वफलैः पुष्पैः पत्रैरपि हुताशने।।32।।
राममाराध्य चावाह्य पूर्ववज्जुहुयात् स्वयम्।
मधुरत्रययुक्तैश्च पद्मैर्वा पायसेन वा।।33।।
तिलैर्वान्यन्तरैरेषां ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः।

क्षमाशील, अहिंसाव्रती और दयालु होकर दृढ़निश्चयी साधक आरम्भ से छह लाख मन्त्र जप सम्पन्न होने तक व्याकुलता का त्याग कर श्रीराम की अर्चना करता हुआ उसका दशांश तर्पण शुद्ध जल से विधानपूर्वक करे। पूर्वोक्त विधि से जल में (कलश पर) पुष्प, अक्षत आदि से श्रीराम की पूजा करे। तब अग्नि में आवाहन कर, श्रीराम की आराधना कर, बेल का फल, पुष्प और पत्र से पूजा कर तीन मधुरों से युक्त कमल फूल, पायस, तिल अथवा अन्य सामग्री से पूवोक्त विधि से हवन करें। तब ब्राह्मण भोजन कराये।

पूजा त्रैकालिकी नित्यं जपस्तर्पणमेव च।।34।।
होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते।
गुरोर्ल्लब्धस्य मन्त्रस्य प्रसन्नाच्च यथाविधि।।35।।
पञ्चाङ्गोपासनं सिद्धेः पुरश्चैतदधीयते।
निष्कामानामनेनैव साक्षात्कारो भवेदिति।[1]।36।।
अथ सिद्धिः सकामानां सर्वं तन्निष्फलं भवेत्।

त्रिकाल पूजन, नित्य जप एवं तर्पण, हवन एवं ब्राह्मण भोजन को पुरश्चरण कहते हैं। सिद्ध एवं प्रसन्न गुरु से विधानपूर्वक प्राप्त मन्त्र की पंचांग उपासना को पुरश्चरण कहते हैं। निष्काम साधक का ईश्वर से साक्षात्कार केवल इतना ही करने से हो सकता है। सकाम साधकों को कामनाएँ सिद्ध होती है, किन्तु ईश्वर से साक्षात्कार निष्फल हो जाता है।

पञ्चाङ्गमेतत् कुर्वीत यः पुरश्चरणं बुधः।।37।।
सर्वं विजयते लोके विद्यैश्वर्य्यसुतादिभिः।
दाता भोक्ता वरिष्ठोऽयं[2] जायते ज्ञातिषु स्वयम्।।38।।
व्याख्याता लुप्तशास्त्रस्य[3] श्रुतानामेव[4] भूतले।

1. घ. भवेदपि। 2. घ. बलिष्ठोऽयं। 3. घ. श्रुतिशास्त्राणां।4. घ. श्रुतानामपि।

चिरायुर्भाग्यवान् पुत्रपौत्रसौभाग्यवान् सुखी।।39।।
निधानमय एव स्याद् धर्मस्य यशसः श्रियः।
यदिच्छति लभेदेतन्मनसापि तपोधन।।40।।
असाध्यमपि देवानां द्वीपान्तरगतं च यत्।
पञ्चाङ्गोपासनं कृत्वा यद्यदिष्टं तदाप्नुयात्।।41।।

जो सकाम ज्ञानी साधक पंचांग पुरश्चरण करते हैं, वे विद्या, ऐश्वर्य पुत्र आदि सभी वस्तुओं इस लोक में विजयी होते हैं; अपने परिचितों के बीच दाताओं और भोग करनेवालों में श्रेष्ठ होते हैं; लुप्त शास्त्रों तथा वेदों के व्याख्याता, दीर्घायु, भाग्यवान्, पुत्र-पौत्रवान् सौभाग्यशाली तथा सुखी होते हैं; धर्म, यश, लक्ष्मी के भण्डार बन जाते हैं। वे मन में भी जो इच्छा करते हैं वह भले दूसरे द्वीप में भी क्यों न हो; देवताओं के लिए भी दुर्लभ क्यों न हो उन्हें प्राप्त करते हैं। पंचांग उपासना कर जो जो इच्छा हो उसे प्राप्त करें।

आदावन्ते च मध्ये च ब्राह्मणान् भोजयेद् बहून्।
दिने दिने यथाशक्त्या राममुद्दिश्य भक्तितः।।42।।
दधिक्षीरघृतापूपव्यञ्जनैस्तृप्तिहेतुभिः।
ऐक्षवैरपि पानीयैर्नारिकेलफलैरपि।।43।।
सुपक्वकदलीसारपनसाम्रतिलैरपि।
अन्यैश्च षड्रसोपेतैः पदार्थैः भोजयेद् द्विजान्।।44।।
सुभोजितेषु विप्रेषु तत्साङ्गं सफलं भवेत्।
यो विप्रं भोजयेन्नित्यं राममुद्दिश्य भक्तितः।।45।।
दरिद्रो मन्दभाग्यो वा कुले तस्य न जायते।

आदि, अन्त और मध्य में अथवा प्रतिदिन श्रीराम को समर्पित कर भक्ति-भाव से अपनी शक्ति के अनुसार अनेक ब्राह्मण-भोजन कराएँ। तृप्त करनेवाले दही, दूध, घी, पुआ, व्यंजन, ईख से प्राप्त रस, नारिकेल का जल आदि पेय पदार्थ एवं फल जैसे पका केला, सार (मलाई), कटहल, आम आदि, तिल आदि अन्न तथा अन्य छह रसों से युक्त पदार्थों से ब्राह्मणों को भोजन कराएँ। ब्राह्मण यदि भलीभाँति भोजन कर लें, तो अंगों के साथ पुरश्चरण सफल हो

जाता है। जो प्रतिदिन श्रीराम के नाम पर ब्राह्मण भोजन कराते हैं, उसके कुल में दरिद्र अथवा मंदभाग्य का व्यक्ति कोई नहीं होता।

उपोष्य द्वादशीष्वेकां द्विजं यो भोजयेद् द्विजः।।46।।
गन्धैः पुष्पाक्षतैर्भक्त्या राममाराध्य भक्तितः।
नैव तत्कुलजातानां दुःखं दारिद्र्यमेव च।।47।।

एक भी द्वादशी तिथियों में भी व्रत कर जो द्विज चन्दन, फूल और अक्षत से भक्तिपूर्वक श्रीराम की आराधना कर द्विजों को भोजन कराते हैं,उनके कुल में जन्म लेनेवालों को इस संसार में दुःख और दरिद्रता नहीं होती है।

संक्रान्तौ पुण्ययोगे च[1] पर्वस्वपि कदाचन।
रामं यो[2] भोजयेद् विप्रं स वै नरपतिर्भवेत्।।48।।

संक्रान्ति में, अन्य पुण्यमय योग में या पर्वों (अमावस्या, पूर्णिमा, अष्टमी तथा चतुर्दशी) में श्रीराम के स्वरूप विप्रों को जो भोजन कराते हैं, वे राजा बन जाते हैं।

यः पुरश्चरणं कुर्यात् सर्वेषां स विशिष्यते।
विद्यया पुत्रपौत्रैश्च धनधान्यादिसंपदा।।49।।

जो पुरश्चरण करते हैं, वे सबमें विद्या, पुत्र, पौत्रादि तथा धन-धान्य, सम्पत्ति से सभी लोगों में विशिष्ट बन जाते हैं।

संसारे दुःखभूयिष्ठे य इच्छेत् सुखमात्मनः।
पञ्चाङ्गोपासेनैव रामं भजत भक्तितः।।50।।

संसार अनेक प्रकार के दुःखों से परिपूर्ण है; इसमें जो अपना सुख चाहते हैं वे पंचांग उपासना कर श्रीराम की आराधना करें।

पञ्चाङ्गोपासनं भक्त्या पुरश्चरणमुच्यते।
एतद्धि विदुषां श्रेष्ठं संसारोच्छेदकारणम्।।51।।
नानेन सदृशो धर्मो नानेन सदृशं तपः।
नानेन सदृशः किञ्चिदिष्टार्थस्य तपोधन।।52।।

हे विद्वानों में श्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! भक्तिपूर्वक पंचांग उपासना को पुरश्चरण कहते हैं। यह संसार में पुनर्जन्म का नाश करता है। इसके समान कोई धर्म, तपस्या और अभीष्ट सिद्धि का दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

1. घ. संक्रान्त्यां पुण्ययोगेषु। 2. घ. कामं च।

यदि होमे त्वशक्तः स्यात् पूजायां तर्पणेऽपि वा।।52।।
तावत्संख्याजपेनैव ब्राह्मणाभ्यसनेन[1] च।
भवेदङ्गद्वयेनैव पुरश्चरणमार्य वै।।53।।

हे आर्य! यदि हवन, पूजा और तर्पण करने की शक्ति न हो, तो उतनी संख्या में जप एवं ब्राह्मण भोजन- इन दो अंगों से ही पुरश्चरण पूरा हो जाता है।

यद्यदङ्गं विहायैतत्[2] संख्याद्विगुणो जपः।
कर्तव्यः साङ्गसिद्ध्यर्थं तदशक्तेन भक्तितः।।54।।
न चेदङ्गं विहायैतत्[3] ततश्चेष्टमवाप्नुयात्।।55।।

यदि शक्ति के अभाव में अंगों को छोड़कर पुरश्चरण किया जाता है, तो अंगों की भी सिद्धि के लिए भक्ति-भाव से जप की संख्या दोगुनी होनी चाहिए। यदि अशक्त भक्तिपूर्वक अंगों को छोड़कर भी पुरश्चरण करें, तब भी इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति होती है।

अङ्गहीनं भवेद्यद्यत् कर्म नेष्टार्थसाधकम्।
सर्वथा भोजयेद् विप्रान् कृतसाङ्गत्वसिद्धये।।56।।

अंगहीन कर्म जो जो होते हैं, उनसे इच्छित की सिद्धि नहीं होती है; अतः सांगत्व की सिद्धि के लिए ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए।

विप्राराधनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गं तदाप्नुयात्।
न्यूनातिरिक्तकर्माणि न फलन्ति मनोरथान्।।57।।

केवल ब्राह्मणों की आराधना करने से अंगहीन भी अंगसहित के समान फलदायी होता है, अन्यथा कमी-बेशी जिस कर्म में हुआ हो, उससे मनोरथ पूरे नहीं होते।

तेष्वेव यदि पूज्येष्वपर्याप्तानि सन्ति च।
अतो यत्नेन विदुषो भोजयेत् सर्वकर्मसु।।58।।

विप्रों की आराधना कर लेने पर जो अपर्याप्त अर्थात् अंगहीन पुरश्चरण कर्म हैं, वे भी फलदायी होते हैं; अतः सभी कर्मों में विद्वानों को भोजन कराना चाहिए।

---

1. घ. ब्राह्मणाराधनेन च। 2. घ. विहीयेत। 3. घ. विहीयेत।

यानि यान्यपि[1] कर्माणि हीयते द्विजभोजनैः।

निरर्थकानि तानि स्युः पथि बीजाङ्कुरा इव।।59।।

जो कोई कर्म ब्राह्मण-भोजन के अभाव में च्युत हो जाते हैं, वे रास्ते पर गिरे बीज के अंकुर के समान निरर्थक हो जाते हैं।

तस्यैव स्तुतिलक्षेषु शस्यते बहिरर्चनम्।

रामाराधनकोटिभ्यः स ध्यानजप उत्तमः।।60।।

लाखों स्तुतियों के द्वारा की गयी अर्चनाओं में बाह्यार्चन प्रशस्त है और श्रीराम की आराधना की अनेक श्रेणियों में ध्यान के साथ जप उत्तम है।

मन्त्रार्थलोचनात्मायं स्वयमेवेष्टसाधकः।

योऽर्चयेद् बहुशो[2] नित्यं रामं तेष्वेव चिन्तयन्।।61।।

इह भुक्तिश्च मुक्तिश्च भवेत्तस्य न संशयः।।62।।

मन्त्रार्थ रूपी आँखों वाला, इष्टसाधक, स्वयं ही, अनेक प्रकार से, प्रतिदिन, मन्त्रों में हीं श्रीराम की सत्ता का चिन्तन करते हुए, आराधना करते हैं, उन्हें संसार में भोग और जीवनान्त में मोक्ष उन्हें मिलता है, इसमें सन्देह नहीं।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये पुरश्चरणविधिर्न्नाम षोडशोऽध्यायः।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अथाभिषेकं वक्ष्यामि दीक्षाविधिमनुत्तमम्।

उपासनाशतेनापि विना येन न सिद्ध्यति।।1।।

अगस्त्य बोले- 'अब मैं दीक्षा विधान के अन्तर्गत अभिषेक की विधि बतलाता हूँ, जिसके विना सैकड़ो उपासना करने से भी प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती है।'

---

1. घ. यान्यनल्पानि। 2. घ. विदुषो।

उपासकस्तु शुद्धात्मा गुरुं यत्नेन तोषयेत्।
स्वचित्तवित्तकायैश्च भक्तिश्रद्धासमन्वितः।।2।।

साधक शुद्ध चित्त से भक्ति और श्रद्धापूर्वक अपने तन, मन और धन से गुरु को यत्नपूर्वक सन्तुष्ट करे।

यदा ददाति सन्तुष्टः प्रसन्नवदनो मनुम्।
स्वयमेव तथा चैवमिति कर्त्तव्यताक्रमः।।3।।

गुरु संतुष्ट होकर प्रसन्न मुख से स्वयं वर प्रदान करनेवाला मन्त्र शिष्य को देते हैं, यह कर्तव्य का क्रम है।

विशुद्धकाले देशेषु शुद्धात्मा नियतो गुरुः।
संकल्प्योपोष्य कर्तव्यमङ्कुरारोपणं मुने।।4।।

हे मुने! पवित्र समय में पवित्र स्थलों पर निर्मल चित्त वाले तथा नियमों का पालन करते हुए गुरु संकल्प एवं उपवास कर बीजारोपण करें।

कुर्य्यान्नान्दीमुखश्राद्धमादौ च स्वस्तिवाचनम्।
स्वगृह्योक्तप्रकारेण[1] तदेतद् विदधीत वै।।5।।

सबसे पहले अपने गृह्यसूत्र की विधि से नान्दीमुख श्राद्ध करे, तब स्वस्तिवाचन करें। तब यह कर्तव्य करना चाहिए।

मधुमासे भवेद् दुःखं माधवे रत्नसञ्चयः।
मरणं भवति ज्येष्ठे आषाढे बन्धुनाशनम्।।6।।
समृद्धिः श्रावणे न्यूनं भवेद् भाद्रपदे क्षयः।
प्रजानामाश्विने मासे सर्वतः शुद्धिमेव हि।।7।।
ज्ञानं स्यात् कार्तिके सौख्यं मार्गशीर्षे भवेदपि।
पौषे ज्ञानक्षयो माघे भवेन्मेधाविवर्द्धनम्।।8।।
फाल्गुने तु समृद्धिः स्यान्मलमासं विवर्जयेत्।

चैत्र मास में दुख, वैशाख में रत्न-संग्रह, ज्येष्ठ में मृत्यु, आषाढ में बन्धु-नाश, श्रावण में अल्प समृद्धि, भाद्रपद में नाश, आश्विन मास में सन्तति की शुद्धि, कार्तिक मास में ज्ञान, अग्रहण में सुख, पौष में ज्ञान का क्षय तथा माघ मास में

1. घ. विधानेन।

दीक्षा लेने से ज्ञान-वृद्धि तथा फाल्गुन में समृद्धि की प्राप्ति होती है। दीक्षा-ग्रहण में मलमास का त्याग करना चाहिए।

रवौ गुरौ सिते सोमे कर्त्तव्यं बुधशुक्रयोः।।9।।

शुक्लपक्ष में रवि, गुरु, सोम, बुध और शुक्र को दीक्षा लेनी चाहिए।

अश्विनी रेवती[1] स्वाती विशाखा हस्त एव च।[2]
पुष्यं शतभिषक् चैव श्रवणा च धनिष्ठिका।[3]।10।।
ज्येष्ठोत्तरात्रयेष्वेव कुर्यान्मन्त्राभिषेचनम्।

अश्विनी, रेवती, स्वाती, विशाखा, हस्त, पुष्य, शतभिषा, श्रवणा, धनिष्ठा, ज्येष्ठा एवं उत्तरात्रय इन नक्षत्रों में मन्त्राभिषेक करना चाहिए।

पूर्णिमा पञ्चमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा।।11।।
द्वादश्यामपि कर्त्तव्यं षष्ठ्यामपि विशेषतः।[4]
त्रयोदशी च नवमी[5] प्रशस्ताः सर्वकामदाः।।12।।

पूर्णिमा, पंचमी, द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी, षष्ठी, त्रयोदशी और नवमी तिथियाँ प्रशस्त हैं, ये सभी कामनाओं की पूर्ति करती हैं।

पञ्चाङ्गशुद्धदिवसे सोदये शशितारयोः।
गुरुशुक्रोदये शुद्ध-लग्ने द्वादशशोधिते।।12।।
चन्द्रतारानुकूले च शस्यते सर्वकर्मसु।

तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण इन पांचों अंगों की से पवित्र दिन में चन्द्रमा और नक्षत्रों के उदित रहने पर, गुरु एवं शुक्र के उदित रहने पर, शुद्ध लग्न एवं द्वादश लग्नों का शोधन कर चन्द्र एवं नक्षत्र के अनुकूल समय में दीक्षा सभी कर्मों में प्रशस्त होती है।

सूर्यग्रहणकाले तु नेदमन्वेषणं भवेत्।।13।।
सूर्यग्रहणकालेन समानो नास्ति कश्चन।
तत्र यद्यत् कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत्।।14।
न मासतिथिवारादिशोधनं सूर्य्यपर्वणि।
ददातीष्टं गृहीतं यत् तस्मिन् काले मुनीश्वर।।15।।

1. घ. रोहिणी। 2. घ. हस्तभेपु च। 3. घ. में अनुपलब्ध।4. घ. में अनुपलब्ध। 5. घ. दशमी।

सिद्धिर्भिवति मन्त्रस्य विनायासेन वेगतः।
अतस्तत्रैव रामस्य मन्त्रतीर्थाभिषेचनम्।।16।।

सूर्यग्रहण के समय में इन योगों का अन्वेषण नहीं किया जाता है। सूर्यग्रहण के समान कोई काल नहीं है। उस समय में जो कर्म किये जाते हैं, उनसे अनन्त फल मिलता है। मास, तिथि, दिन आदि की अपेक्षा सूर्यग्रहण में नहीं होता। इस समय जो मन्त्र-ग्रहण किया जाता है, वह सभी इच्छित वस्तुओं को पूरा करता है। विना प्रयास का ही वह मन्त्र सिद्ध हो जाता है; अतः सूर्यग्रहण के समय में ही श्रीराम के मन्त्ररूपी तीर्थ से अभिषेक करना चाहिए।

कर्तव्यं सर्वयत्नेन मन्त्रसिद्धिमभीप्सुभिः।
चतुर्भिर्वर्णकैः सम्यक् नीलपीतसितासितैः।।17।।
पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा तत्र धान्याञ्जलिद्वयम्।
नारिकेलफलोपेतं माङ्गलैः परितोज्ज्वलम्।
निधाय कलशं तत्र तीर्थतोयसुपूरितम्।।18।।
[1]वेष्टितं वस्त्रयुग्मेन पञ्चरत्नसमन्वितम्।
आम्राश्वत्थप्रसूताभिः शाखाभिरुपशोभितम्।।19।।
नारिकेलफलोपेतं मण्डलैः परितोज्ज्वलम्।
सर्वोत्सवसमायुक्तं कृत्वा तत्रार्चयेद्धरिम्।।20।।

मन्त्र सिद्धि की इच्छा रखनेवाले सभी प्रकार के उपाय करें। नीले, पीले, उजले एवं काले इन चारों रंगों के सुगन्धित पदार्थों से पूर्वोक्त विधि से यन्त्र का निर्माण कर बीच में दो अंजलि धान रखकर उस पर नारियल के फल से युक्त तथा मंगलमय पदार्थों को उसके चारों ओर रखकर कलश स्थापित कर तीर्थ के जले से भली भाँति भर दें। उसमें पंचरत्न डालकर जोड़ा वस्त्र से लपेट दें। कलश को आम और पीपल की शाखाओं से सुसजित करें। नारिकेल के फल से भी सुज्ञित कर दीप जलाकर तथा इसे चारो ओर से घेरकर सभी प्रकार का उत्सव करते हुए वहाँ श्रीहरि की अर्चना करें।

ऋग्यजुःसामसूक्तैश्च स्मार्तैः पौराणिकैरपि।
मन्त्रैरागमिकैश्चैव वैष्णवैर्देवमर्चयेत्।।21।।

ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के सूक्तों से स्मृति और पुराणों तथा आगम के विष्णु-मन्त्रों से देवता की अर्चना करें।

1. घ. यहाँ से चार चरण घ. में अनुपलब्ध।

वरयेद् ब्राह्मणान् वासः कुण्डलाङ्गुलिभूषणैः।
श्रावयेत् तैः सुसूक्तानि मन्त्रान् विष्णूत्सवे मुने।।।22।।

इसके बाद वस्त्र, कुण्डल, अंगूठी और अन्य आभूषणों से ब्राह्मणों का वरण करें और उनसे इस विष्णु के समारोह में सुन्दर सूक्तों को सुनाएँ।

गुरुः पूर्वोक्तविधिना भूतशुद्ध्याद्यमाचरेत्।
न्यासजालं प्रविन्यस्य पूजयेत् तत्र पूर्ववत्।।23।।
पूजनीयैश्च पूर्वोक्तसाधनैः पुरुषोत्तमम्।
पूर्वोक्तनृत्यगीताद्यैरुत्सवं तत्र कारयेत्।।24।।

गुरु पूर्वोक्त विधि से भूतशुद्धि आदि करें तथा सभी न्यासों को कर के वहाँ पूर्वोक्त विधि से पूजन करें। पूर्वोक्त पूजा सामग्रियों से विष्णु की पूजा करें तथा पूर्वोक्त नृत्य, गीत, वाद्य आदि से वहाँ उत्सव करें।

पुण्यस्त्रीभ्यो गृहस्थेभ्यो दद्यात् सुबहुविस्तरम्।
गन्धपुष्पाम्बु ताम्बूलं सद्वासो भूषणादिकम्।।25।।
भोजनञ्चान्नपानीयैरन्येभ्योऽपि तपोनिधे।

इस समारोह में पवित्र स्त्रियों और गृहस्थों को चन्दन, पुष्प, जल, पान, सुन्दर वस्त्र, गहने, भोजन, अन्न, पेय पदार्थ आदि दें तथा दूसरे को भी ये वस्तुएँ प्रदान करें।

एवं तत्रोत्सवं कृत्वा रात्रौ जागरणं चरेत्।।26।।
एवं दिवा च रात्रौ च त्रिकालं पूजयेत् प्रभुम्।

इस प्रकार उत्सव कर रात्रि में जागरण करें। इस तरह दिन और रात्रि में तीनों समय प्रभु का पूजन करें।

षट्सहस्रं जपेन्मन्त्रं[1] पूजान्तेऽहर्निशं मुने।।27।।
परेऽहनि तथा प्रातः पूर्ववत्सर्वमाचरेत्।

दिन-रात पूजा के अन्त में छह हजार मन्त्र का जप करें। दूसरे दिन भी प्रातःकाल में पूर्व दिन के अनुसार ही सारे कर्म करें।

सम्पूज्य विधिवद्राममग्निकार्यमथाचरेत्।।28।।
पूर्ववत् कुण्डमुत्खाय कुर्य्यात् तत्रापि मण्डलम्।
तत्राप्यग्निं समाधाय रामं तत्रार्चयेत् प्रभुम्[2]।।29।।

---

1. घ. जपेत् तत्र। 2. घ. हरिम्।

साङ्गावरणमावाह्य पूर्ववच्च यथाविधि।
तदग्निस्थापनाद्यं च सर्वं पूर्ववदाचरेत्।।30।।
दधिदुग्धाज्यसंयुक्तैर्दशांशं जुहुयात् तिलैः।
हुत्वा पूर्णाहुतिं कृत्वा ततस्तं कलशेऽर्चयेत्।।31।।
ततो दिक्षु बलिं दत्वा कृत्यमेतत् समाचरेत्।

श्रीराम की विधिवत् पूजाकर तब हवन कार्य आरम्भ करें। पूर्वोक्त विधि से कुण्ड खनकर वहाँ भी यन्त्र बनाएँ। वहाँ अग्नि-स्थापन कर प्रभु श्रीराम की अर्चना करें। पूर्वोक्त विधि से अंग देवता और आवरण देवता का आवाहन कर विधिपूर्वक अर्चना करें और अग्निस्थापन आदि भी पूर्वोक्त विधि से करें। दही, दूध और घी मिलाकर तिल से जप का दशांश हवन करें। हवन कर पूर्णाहुति देकर तब कलश पर प्रभु की अर्चना करें। तब सभी दिशाओं में दिक्पालों को बलि देकर आगे वर्णित कार्य करें।

ततः शिष्यमुपानीय भक्तिनम्रमकल्मषम्।
प्राणानायम्य[1] विधिवद् भूतशुद्धिं विधाय च।।32।।
सुरास्त्वामितिमन्त्रेण[2] बहुभिर्ब्राह्मणैः सह।

---

1. घ. प्राणायमञ्च।
2. 'सुरास्त्वां' इत्यादि मन्त्र इस प्रकार है-

सुरास्त्वामभिसिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। वासुदेवो जगन्नाथस्तथासङ्कर्षणो विभुः।। प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते। आखण्डलोग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा। वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः। ब्रह्मणासहितश्शेषो दिक्पालाः पान्तु ते सदा।। कार्तिर्ल्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः। बुद्धिर्ल्लज्जावपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः।। एतास्त्वामभिसिञ्चन्तु देवपत्न्यस्समागताः। आदित्यश्चन्द्रामाभौमो बुधजीवसितार्क्कजाः। ग्रहास्त्वामभिसिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्प्पिताः। देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः। ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च।। देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः। अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च।। औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये। सरितस्ससागराः शैलास्तीर्थानि च ह्रदा नदाः। एतेस्त्वामभिसिञ्चन्तु सर्वकर्मार्थसिद्धये।। **—विद्यापति कृत दुर्गाभक्तितरंगिणी का पाठ।**

अभिषिञ्चेच्च तन्मूर्ध्नि तदेतत्कलशोदकम्।।33।।
नारायणः स्वयं रामः शिष्ये संनिदधीत वै।
सर्वगः सर्वतोऽप्यस्ति प्रसीदति दयानिधिः।।34।।
इति संस्मृत्य संस्मृत्य तज्जलैरभिषेचयेत्।

इसके बाद भक्ति के कारण विनीत एवं निष्पाप शिष्य को लाकर विधिवत् प्राणांयाम कराकर भूतिशुद्धि कर 'सुरास्त्वां.' इत्यादि मन्त्र से अनेक ब्राह्मणों के साथ इस कलश के जल से उसके मस्तक पर अभिषेक करें। स्वयं नारायण श्रीराम इस शिष्य में सन्निहित हों, जो सर्वत्र गमन करनेवाले हैं तथा सभी ओर से वे विराजमान हैं तथा वे दयानिधि प्रसन्न हो रहे हैं'- ऐसा बार-बार स्मरण कर कलश जल छिड़कें।

परिधाप्य च वासश्च चन्दनादि विलिप्य च[1]।।35।।
कुण्डले चाङ्गुलीयञ्च धारयित्वा न्यसेत् ततः।
वैष्णवीं मातृकां चैव तत्त्वन्यासञ्च पूर्ववत्।।36।।
तन्मूर्तिपञ्जरन्यासमृष्यादिन्यासमेव च।
पूर्ववद् विधिवच्छिष्यतनावेवं प्रविन्यसेत्।।37।।

तब शिष्य को वस्त्र पहनाकर चन्दनादि का लेप कर दोनों कानों में कुण्डल तथा अंगूठी पहना कर पूर्वोक्त विधि से तत्त्वन्यास तथा वैष्णव-मातृका का न्यास करें। श्रीराम का मूर्तिपंजर-न्यास कर ऋष्यादि-न्यास भी पूर्वोक्त विधि से शिष्य के शरीर पर करें।

ततस्तच्छिरसि स्वस्य हस्तं दत्वा शतं जपेत्।
अष्टोत्तरं ततो मन्त्रं दद्यादुदकपूर्वकम्।।38।।
प्रसन्नवदनस्तस्मै शिष्याय मुनिपुङ्गव।
स्वतो ज्योतिर्मयीं विद्यां गच्छन्तीं भावयेद् गुरुः।।39।।
आगतां भावयेच्छिष्यो धन्योऽस्मीति विशेषतः।।40।।

तब शिष्य के शिर पर हाथ रखकर गुरु स्वयं एक सौ आठ बार जप करें तब पहले जल देकर प्रसन्न होकर शिष्य को मन्त्र दें साथ ही गुरु यह भावना करें कि यह ज्योतिःस्वरूप विद्या स्वयं शिष्य के प्रति जा रही है। शिष्य भी यह भावना करें कि विद्या मेरे प्रति आ रही है और इससे मैं धन्य हो गया हूँ।

1. घ. चन्दनाद्यनुलिप्य च।

कृतकृत्यस्ततः शिष्यस्तस्मै सर्वं निवेदयेत्।
यच्च यावच्च यद्भक्त्या गुरुवे हृष्टचेतनः।।41।।
गोभूहिरण्यं विपिनं गृहं क्षेत्रादिकं मुने।
न चेदर्द्धं तदर्द्धं वा दशांशमपि वापि वा।।42।।
अक्लेशादन्नवस्त्रादि दद्याद् वित्तानुसारतः।।43।।
प्रकारान्तरमालम्ब्य गुरुं यत्नेन तोषयेत्।
गुरुपुत्रकलत्रादीन् तोषयेद् बहुभक्तितः[1]।।44।।
अर्हणादिश्च बहुभिर्भक्त्याच्छादनभूषणैः।

तब शिष्य चेतना का दर्शन कर कृतकृत्य होकर प्रसन्न चित्त से गुरु को भक्तिपूर्वक सब कुछ गाय, भूमि, सोना, वन, घर, खेत आदि समर्पित करे। यदि न हो, तो इसका आधा, आधे का आधा या दशांश भी दे। स्वयं कष्ट न कर धन के अनुसार अन्न वस्त्र आदि गुरु को समर्पित करें। अन्य विधि से भी यत्नपूर्वक गुरु को सन्तुष्ट करें। गुरु की पत्नी उनके पुत्र आदि को भी भक्तिभाव से वस्त्राभूषण देकर उनकी पूजा कर सन्तुष्ट करें।

एवमुक्तप्रकारेण गुरवे दत्तदक्षिणः।
कृतकृत्यं तथात्मानं मत्वा विप्रांश्च भोजयेत्।।45।।
तेभ्यश्च[2] दक्षिणां दत्त्वा सर्वं तत्प्रतिपूजयेत्[3]।
ब्राह्मणाशीर्वचोभिश्च गुर्वाशीर्भिः समेधितः।।46।।
विसर्जयेच्च गुर्वादीन् ततो भुञ्जीत मन्त्रवित्।

इस प्रकार ऊपर कही गयी विधि से गुरु को दक्षिणा देकर स्वयं को कृतकृत्य मानकर ब्राह्मण भोजन कराएँ। उन्हें दक्षिणा देकर उनका अभिवादन करें। इस प्रकार ब्राह्मणों और गुरु के आशीर्वाद से पवित्र होकर गुरु आदि को विदा करें तब साधक स्वयं भोजन करें।

एवं लब्धमनुर्विप्रः कृतार्थः स्यान्न संशयः।।47।।
तदादि संध्यां कुर्वीत नियतो गुर्वनुज्ञया।
सायं प्रातश्च मध्याह्ने रामं ध्यात्वा मनुं जपेत्।।48।।

---

1. घ. बहुभिः स्वयम्। 2. घ. तेभ्योऽपि। 3. घ. परिपूरयेत्।

इस प्रकार मन्त्र प्राप्त कर वह विप्र होकर धन्य हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं। इसके बाद वह गुरु की आज्ञा से सायं, प्रातः और मध्याह्न में सन्ध्या कर श्रीराम का ध्यान कर मन्त्र का जप करें।

जलमस्त्रेण संशोध्य कवचेनावगुण्ठ्य च।
चक्रीकृत्य जलं सम्यक् दर्भमूलेन मन्त्रवित्।।49।।
आवाहनादिभुद्राभिस्तीर्थमावाह्य पूजयेत्।
ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे।।50।।
तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर।
गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।।51।।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।

जल को अस्त्र-मन्त्र से शोधित कर कवच मन्त्र से उसे ढँककर चक्रीकरण कर कुश की जड़ से आवाहन आदि की मुद्राओं से तीर्थ का आवाहन कर साधक तीर्थों की पूजा इस मन्त्र से करें-

हे देव सूर्य! "सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के गर्भ में जो तीर्थ हैं, जिन्हें सूर्य के किरण स्पर्श करते हैं, इस शपथ के कारण वे तीर्थ मुझे दें। हे गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी इस जल में आप सब निवास करें।"

एवमावाह्य चाराध्य विधिवत् तज्ज्लं मुने।।52।।
आदायाञ्जलिना सम्यक् जपेन्मालामनुं सकृत्।
जलं दक्षिणहस्तस्थं सव्यहस्ते विनिक्षिपेत्।।53।।
तन्निःसृताम्बुना मूर्ध्नि सिञ्चेन्मालामनुं स्मरन्।
दशाक्षरेण तच्छेषमभिमन्त्र्य जलं क्षिपेत्।।54।।

इस प्रकार तीर्थो का आवाहन कर उनकी आराधना विधिपूर्वक करके उस जल को अंजलि में लेकर माला-मन्त्र का एक बार जप करें। तब दाहिने हाथ के जल को बाये हाथ में लें तब माला-मन्त्र का जप करते हुए बायें हाथ से गिरते हुए जल को मस्तक पर छिड़के। अन्त में दशाक्षर मन्त्र से शेष जल को चारो ओर छिड़क दें।

पुनरञ्जलिमादाय जलं मूर्ध्नि तु तत् क्षिपेत्।[1]
ततो रामोऽहमस्मीति गायत्रीं नियतो जपेत्।।55।।

फिर अंजलि से जल लेकर उसे अपने मस्तक पर छिड़कें। तब 'मैं राम हूँ' यह भावना कर नियमपूर्वक राम-गायत्री का जप करें।

1. घ. जलमूर्द्ध्वं त्रिरुत्क्षिपेत्। इसके बाद क. में 'मण्डलस्थाय रामाय पाद्यार्घ्यं कल्पयाम्यहम्' यह अधिक है, जो अप्रासंगिक है।

जन्मप्रभृति यत्पापं दशभिर्याति सञ्चितम्।
पुराकृतं शतेनैव सहस्रेण जपेन वा।।56।।

पूर्वकाल में जन्मकाल से लेकर दश इन्द्रियों द्वारा जो पहले किये गये पाप संचित हैं, वे सौ बार या हजार बार जप से नष्ट हो जाते हैं।

पदं[2] दशरथायेति विद्महेति पदं ततः।
सीतापदं समुद्धृत्य वल्लभाय ततो वदेत्।।57।।
धीमहीत्यपि तन्नोऽथ रामश्चापि प्रचोदयात्।
एषा स्याद् रामगायत्री भक्तानां भुक्तिमुक्तिदा।।58।।

सबसे पहले 'दशरथाय' यह पद बोलें। तब 'विद्महे' बोले तब 'सीता' पद कहकर तब 'वल्लभाय' कहें। 'धीमहि' ऐसा कहकर 'तन्नो' 'रामः' और 'प्रचोदयात्' कहें। यह रामगायत्री है, जो भक्तों को भोग और मोक्ष प्रदान करती है।

पुरश्चरणमस्याश्च चतुर्लक्षजपावधि।
यच्च यावच्च पूजादि सर्वं पूर्ववदाचरेत्।।59।।

इसका भी पुरश्चरण चार लाख जप का होता है। जो पूजा होगी, वह पूर्वोक्त विधि से करें।

ओमादिरेषा गायत्री मुक्तिमेव प्रयच्छति।
मायादिरपि वैदुष्यं रमादिश्च श्रियं मुने।।60।।
मदनेनापि संयुक्ता सम्मोहयति मेदिनीम्।।
अनयाराधितो रामः सर्वाभीष्टं प्रयच्छति।।61।।

इसके आदि में ॐ लगाकर जप करने से मुक्ति ही मिलती है। माया बीज (ह्रीं) आदि में लगाने से वैदुष्य तथा लक्ष्मी बीज (श्रीं) से धन प्राप्ति होती है। कामबीज (क्लीं) लगाकर जप करने से वह पूरी पृथ्वी को सम्मोहित कर लेता है। इस प्रकार पूजित श्रीराम सभी मनोरथ पूर्ण करते हैं।

तर्पयेच्च ततो मूलमन्त्रोच्चारणपूर्वकम्।
[2]रामं तर्पयामि नमः पीठदेवादिपूर्वकम्।।62।।
चत्वारिंशद्धरीनादौ सीतादींश्चतुरः क्रमात्।

इसके बाद मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए 'रामं तर्पयामि नम' ऐसा कहते हुए पीठस्थ अन्य देवों का भी इसी प्रकार तर्पण करें। पहले चालीस देवताओं का तर्पण (हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अंगद, शत्रुघ्न,

1. घ. वदेद्। 2. घ. यहाँ दो श्लोक अनुपलब्ध हैं।

जाम्बवान्, धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्द्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त। नल, नील, गवय, गवाक्ष, गन्धमादन, सुरभि, मैन्द और द्विविद। वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, गौतम, भरद्वाज, कौशिक, वाल्मीकि और नारद। दशरथ, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा। राम लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न।) कर सीता आदि चार (सीता, माण्डवी, उर्मिला एवं श्रुतिकीर्ति) देवों का क्रमिक तर्पण करें।

हृदादींस्तर्पयेत्पश्चान्मध्ये मध्ये रघूद्वहम्।
नाममन्त्रैर्भवेदेवं चत्वारिंशच्छतद्वयम्।।63।।
कृत्वैवं प्रत्यहं सम्यक् त्रिसन्ध्यन्तु यथाविधि।
स्तुवंश्च प्रणमेद् रामं यथाशक्ति मुनीश्वर।
कृतकृत्यो भवेन्मन्त्री सत्यं सत्यं न चान्यथा।।64।।

हे मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! हृत् आदि को तर्पण बाद में करें; बीच-बीच में श्रीराम को तर्पण करें। इस प्रकार नाम मन्त्रों से यह तर्पण दो सौ चालीस बार होगा। इस प्रकार सम्यक् रीति से प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में विधानपूर्वक कृत्य सम्पन्न कर तथा श्रीराम की स्तुति करते हुए, उन्हें यथाशक्ति प्रणाम करें। इस प्रकार साधक कृतकृत्य हो जाता है, यह सत्य है, सत्य है इसमें सन्देह नहीं।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये पूजाविधानं नाम सप्तदशोऽध्यायः।

अथ अष्टादशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अथ पूजाविधानानां लक्षणान्यभिदध्महे।
अम्बुचन्दनपुष्पाणि धूपदीपनिवेदनम्[1]।।1।।
हरेरेतानि[2] मुख्यानि साधनानि मुनीश्वर।
स्थलमप्यर्घ्यपात्राणि शङ्खं चैषाञ्च लक्षणम्।।2।।

अगस्त्य बोले– हे मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण, अब मैं पूजा-सामग्रियों के स्वरूप बतलाता हूँ। जल, चन्दन, फूल, धूप एवं दीप का समर्पण पूजा के मुख्य साधन हैं तथा पूजा-स्थल, अर्घ्यादिपात्र तथा शंख ये जो साधन हैं, उनका लक्षण मैं कहता हूँ।

1. घ. धूपदीपौ निवेदयेत्। 2. क. हविरेतानि।

अन्यानिवेदितं शुद्धं प्रकृतिस्थं सुशीतलम्।
हेमादिकलशान्तस्थं पूजासाधनमिष्यते।।3।।

जो जल दूसरे देवता को न चढाया गया हो तथा कलश में रखा गया हो ऐसा शुद्ध अपने स्वभाव के अनुरूप हो तथा शीतल हो वैसा जल पूजा की सामग्री है।

अनन्यार्पितपूर्वाणि गन्धवन्ति सितानि च।
पीतान्यपि मनोज्ञानि छिद्रेण रहितानि च।।4।।
पुष्पाण्येवात्र शस्यन्ते न चेत् सर्वं निरर्थकम्।

जो पुष्प पूर्व में दूसरे देवता को न चढ़ा हो, पवित्र, सुगन्धित, श्वेत अथवा पीत, सुन्दर, छिद्र से रहित हो वे ही फूल इस पूजन में प्रशस्त हैं, नहीं तो सारा व्यर्थ है।

चन्दनं मलयोत्पन्नमनाघ्रातं सुशीतलम्।।5।।

मलय पर्वत से उत्पन्न श्रीखण्ड चन्दन, जो सूँघा गया न हो और शीतल हो, प्रशस्त है।

कर्पूरागरुकस्तूरीहिमान्यादिसुवासितम्[1]।
पूजायां शस्यते धूपस्ताम्रकांस्यादिनिर्मिते।।6।।
पात्रे वा द्विदले भुग्ननाले पद्माकृतौ मुने।
सारांगारविनिक्षिप्ते गुग्गुल्वगरुवृक्षजे।।7।।
निर्यासादुत्थितैर्धूपैर्गन्धद्रव्यैस्तथोद्गतैः।
अनन्यार्पितगन्धोऽयं शस्यतेऽर्चनकर्मणि।।8।।

कर्पूर, अगरु, कस्तूरी, हिमानी आदि से सुगन्धित किया हुआ धूप पूजा में प्रशस्त है। ताँबा, कांसा आदि से निर्मित कमल की आकृति वाला, जिसमें दो नाल लगे हों और दो पत्र भी हों, इस प्रकार के पात्र में सारिल लकड़ी का अंगार डाला गया हो, गुग्गुल या अगुरु के वृक्ष से उत्पन्न निर्यास से उठते हुए धूपों या सुगन्धित द्रव्यों से भी बना जो धूप दूसरे देवता को अर्पित नहीं किया गया हो, वह अर्चना के कर्म में प्रशस्त है।

दीपोऽपि पूर्ववत्पात्रे मण्डलाकारनिर्मितः[2]।
प्रतिपात्रं प्रदीप्तश्च वर्त्या गव्यघृतादिना।।9।।

1. घ. हिमाभादिसुभाषितम्। 2. घ. मण्डलाकारकारितैः।

अन्यानिवेदितः पूजाकर्मण्येव प्रशस्यते।

दीप भी पूर्वोक्त स्वरूप के पात्र में गोलाकार में निर्मित और प्रत्येक दीप गाय के घी से जलते हुए दीप पूजा कर्म में प्रशस्त होते हैं, यदि वह दूसरे देवता को समर्पित न किया गया हो।

पायसापूपसंपक्वफलोपेतं हविर्मुने[1]।।10।।
शुद्धं च षड्रसोपेतं अनन्यार्पितमिष्यते।
नैवेद्यमर्चनायान्तु सताम्बूलं निवेदयेत्।।11।।

खीर, पुआ, पकवान, फल जो शुद्ध हो और छह रसों से परिपूर्ण हो और दूसरे देवता को अर्पित न किया गया हो, वह नैवेद्य पान के साथ पूजा में अर्पित करना चाहिए।

स्थलं प्रासादविपिननदीतीरगतं[3] समम्।
चतुरस्रं चतुर्हस्तं हस्तोन्नतसुवेदिकम्।।12।।
चन्द्रातपपताकादितोरणैः प्रोल्लसच्छविः।
विविक्तं च विशेषेण शस्यतेऽर्चनकर्मणि।।13।।

पूजा-स्थल के रूप में मकान, जंगल, नदी का तट जो समतल, चौकोर, चार हाथ लम्बाई-चौड़ाई वाला, एक हाथ ऊँची वेदी से युक्त, चँदोवा, पताका, बंदनवार आदि से शोभित एकान्त स्थल पूजा-कर्म में प्रशस्त है।

[3]पात्राणि ताम्रहेमादिनिर्मितानि जलान्तरे।
जलजानीव निर्माय पाद्यार्घ्यर्हणादिषु।।14।।
उपचाराणि शुद्धानि शस्यतेऽत्र विशेषतः।

पाद्य, अर्घ्य आदि कार्यों के लिए ताँबा, सोना आदि का पात्र जो जल में कमल के समान स्वच्छ हो प्रशस्त होते हैं। पूजन-कर्म में सभी शुद्ध साधन प्रशस्त होते हैं।

शङ्खो नाम सदावर्तः पृष्ठमध्यसुनालकः।।15।।
सितैश्च पूरितो नीरैः शस्यतेऽर्चनकर्मणि।

सदावर्त नाम का शंख जिसकी पीठ और मध्य भाग में नाल का चिह्न हो वह शुभ्र जल से पूर्ण पूजा-कर्म में प्रशस्त है।

एतान्यन्यानि पूजायां साधनानि बहूनि च।।16।।

---

1. घ. पायसं पूपमन्नं च सघृतं सह शर्करम्। 2. घ. नदीतटगतं। 3. घ. यहाँ से छह चरण अनुपलब्ध हैं।

तान्युत्तमानि मध्यानि न्यूनानि विधिमन्ति वै।
स्वस्थः समर्थः कुर्वीत चोत्तमैरेव साधनैः।।17।।
मध्यमो मध्यमेनैव न्यूनो न्यूनैस्तपोधन।
आपन्नश्चेत् समर्थोऽपि न्यूनैरेव समाचरेत्।।18।।
पूजाकर्मविशेषेण देशकालानुसारतः।
यथाशक्ति यथान्यायं यथा लोकाविगर्हितम्।।19।।

ऊपर कहे गये अथवा अन्य भी बहुत प्रकार के साधन पूजा में होते हैं, वे उत्तम, मध्यम और न्यून प्रकार के होते हैं। जो साधक स्वस्थ हो, समर्थ हो वे उत्तम साधन से पूजा करें। मध्यम कोटि के साधक मध्यम प्रकार के साधन से पूजा करें तथा न्यून साधक न्यून साधनों से करें। समर्थ भी यदि किसी विपत्ति में हो तो न्यून साधनों से ही पूजा करें। पूजा-कर्म के वैशिष्ट्य से देश एवं काल के अनुसार शक्ति तथा औचित्य के अनुसार ऐसे साधनों का व्यवहार करें, जिसे लोक में निन्दित नहीं माना जाता हो।

एकेन वान्यत्संकल्पः कुयदिवार्चनं तथा।[1]
मुद्राश्च[2] दर्शयेद्यत्नाद् देवसान्निध्यकारिणः।।20।।
दर्शितास्तास्तु देवानां मोदकाः द्रावकाः[3] मुने।
दर्शनीयाः सुतीक्ष्णातो देवतायागकर्मणि।।21।।

अथवा एक ही व्यक्ति दोनों कार्य अर्थात् संकल्प और पूजा करें। देवता के साथ नजदीकी साधनेवाली मुद्राएँ यत्नपूर्वक दिखाएँ। दिखाई गयी मुद्राएँ देवताओं को प्रसन्न तथा द्रवित करतीं हैं। हे सुतीक्ष्ण! अतः देवताओं के याग कर्म में मुद्राएँ दिखानी चाहिए।

आवाहनी स्थापनी च सन्निधीकरणी तथा।
सुसंनिरोधनी मुद्रा संमुखीकरणी तथा।।22।।
सकलीकरणी चैव महामुद्रा तथैव च।
शङ्खचक्रगदापद्मधेनुकौस्तुभगारुडीम्[4] ।।23।।
श्रीवत्सवनमाले च योनिमुद्रां[5] च दर्शयेत्।
मूलाधाराद् द्वादशान्तामानीतां कुसुमाञ्जलिः।।24।।

---

1. घ. कुर्याद् देवार्चनं हरेः। 2. घ. सुमुद्राः। 3. घ. मोदकास्तारकाः। 4. घ. °गारुडाः।5. श्रीवत्सवनमालाख्ययोनिमुद्राश्च।

आवाहनी, स्थापनी, सन्निधीकरणी संरोधिनी, संमुखीकरणी, सकलीकरणी, महामुद्रा, शंखमुद्रा, चक्रमुद्रा, गदामुद्रा, पद्ममुद्रा, धेनुमुद्रा, कौस्तुभमुद्रा, गरुड़मुद्रा, श्रीवत्समुद्रा, वनमालमुद्रा तथा योनिमुद्रा दिखानी चाहिए। मूलाधार से द्वादशार तक लायी गयी कुसुमाञ्जलि मुद्रा भी दिखानी चाहिए।

त्रिस्थानगततेजोभिर्विनीता प्रतिमादिषु।
आवाहनीयं मुद्रा स्याद् देवार्चनविधौ मुने।।25।।
एषैवाधोमुखी मुद्रा स्थापने शस्यते पुनः।

तीनों स्थानों भूः भुवः एवं स्वः में उद्भूत तेज से प्रतिमा में तेज लाने वाली मुद्रा देवार्चन के विधान में आवाहनी कहलाती है। यही अधोमुखी मुद्रा स्थापना में प्रशस्त है।

आवाहनी स्थापनी संनिधीकरणी संनिरोधनी

उन्नताङ्गुष्ठयोगेन मुष्टीकृतकरद्वयी।।26।।
सन्निधीकरणी नाम मुद्रा देवार्चने विधौ।

दोनों हाथों के अंगूठे को ऊपर की ओर खड़ा कर मुट्ठी बाँधकर संनिधिकरणी मुद्रा बनती है, जो देव-पूजन में प्रशस्त है।

अङ्गुष्ठगर्भिणी सैव मुद्रा स्यात् संनिरोधनी।।27।।

इसी संनिधीकरणी मुद्रा में यदि अंगूठे मुट्ठी के अंदर दबे हों तो संनिरोधनी मुद्रा कहलाती है।

उत्तानमुष्टियुगला[1] सम्मुखीकरणी तथा।
अङ्गैरेवाङ्गविन्यासः सकलीकरणी भवेत्[2]।।28।।

दोनों मुट्ठी को ऊपर की ओर उठाकर सम्मुखीकरणी मुद्रा बनती है तथा शरीर के सभी अंगों से अंगों का न्यास करना सकलीकरणी मुद्रा कहलाती है।

---

1. घ. उत्तानमुष्टियोगेन। 2. घ. तथा।

सम्मुखीकरणी सकलीकरणी समापनी

अन्योन्याङ्गुष्ठसंलग्ना विस्तारितकरद्वयी।
महामुद्रेयमाख्याता न्यूनाधिकसमापनी।।29।।

दोनों हाथों के अंगूठे को आपस में सटाने और दोनों हाथों को फैलाने से जो महामुद्रा बनती है, वह न्यूनाधिक दोष को समाप्त करनेवाली समापनी मुद्रा कहलाती है।

कनिष्ठानामिकामध्यान्तस्थाङ्गुष्ठेतरागतः ।
गोपिताङ्गुष्ठमूलेन सन्नतान्मुकुलीकृता।।30।।
करद्वयेन मुद्रा स्याच्छङ्खाख्येयं सुरार्चने।

(दाहिने हाथ की) कनिष्ठा अनामिका मध्यमा के बीच में बायें हाथ का अंगूठा रखकर उसे दाहिने हाथ के अंगूठे की जड़ से ढँकें और अन्य अंगुलियों को चारों ओर से फूल की कली तरह बनावें। दोनों हाथों से बनी यह शंखमुद्रा देवार्चन के लिए कहलाती है।
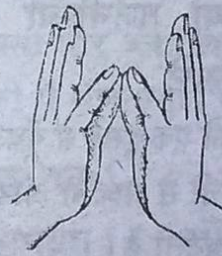
शंखमुद्रा चक्रमुद्रा गदामुद्रा

अन्योन्याभिमुखस्पृष्टव्यत्ययेन[1] तु वेष्टयेत्।।31।।
अङ्गलीभिः प्रयत्नेन मण्डलीकरणं मुने।
चक्रमुद्रेयमाख्याता

1. घ. अन्योन्याभिमुखं स्पर्शव्यत्ययेन।

हे मुने! दोनों हाथों की अंगुलियों को एक दूसरे के विपरीत कर चारों ओर से प्रयत्नपूर्वक अंगुलियों से घेर लें। यह चक्रमुद्रा कहलाती है।

गदामुद्रा ततः परम्।।32।।

अन्योन्याभिमुखाश्लिष्टाङ्गुलिः प्रोन्नतमध्यमा।

इसके वाद गदा मुद्रा कही जाती है। दसो अंगुलियों को एक दूसरे के सम्मुख गूंथ कर मध्यमा को ऊपर उठावें।

अथाङ्गुष्ठद्वयं मध्ये दत्वापि परितः करौ।।33।।
मण्डलीकरणी सम्यगङ्गुलीनां तपोधन।
पद्ममुद्रा भवेदेषा

हे तपोधन सुतीक्ष्ण! बीच में दोनों हाथों के अंगूठे को सटाकर इसके चारों ओर दोनों हाथों की शेष आठ अंगुलियों से मण्डल बनावें। यह पद्ममुद्रा कहलाती है।
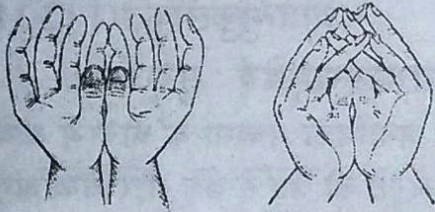
पद्ममुद्रा धेनुमुद्रा

धेनुमुद्रा ततः परा।।34।।

अनामिकाकनिष्ठाभ्यां तर्जनीभ्यां च मध्यमे।
अन्योन्याभिमुखाश्लिष्टे

दोनों हाथों की अंगुलियों को एक दूसरे से गूँथकर अनामिका से कनिष्ठिका, कनिष्ठिका से अनामिका तथा तर्जनी से मध्यमा और मध्यमा से तर्जनी को सटा देने पर धेनुमुद्रा या सुरभि मुद्रा बनती है।

ततः कौस्तुभसंज्ञिका।।35।।

कनिष्ठेन्योन्यसंलग्नेऽभिमुखे च परस्परम्।
वामस्य तर्जनीमध्ये मध्यानामिकयोरपि।
वामानामिकसंस्पृष्टे तर्ज्जनीमध्यशोभिता।
पर्यायेण नताङ्गुष्ठाद्वयी कौस्तुभलक्षणा।।37।।

इसके बाद कौस्तुभ मुद्रा कही गयी है। दोनों कनिष्ठा को आमने-सामने एक दूसरे से सटाकर वाम हाथ के तर्जनी, मध्यमा और अनामिका के बीच बायीं अनामिका को छूती हुई तर्जनियों के बीच रखकर बारी-बारी से दोनों अंगूठा को नीचे झुकाकर कौस्तुभ मुद्रा बनती है।

कनिष्ठान्योन्यसंलग्ना विपरीतं नियोजिता।
अधस्तात् प्रापिताङ्गुष्ठा मुद्रा गारुडसंज्ञका।।38।।

कनिष्ठा अंगुलियों को एक दूसरे के विपरीत संलग्न कर उन्हें अंगूठे के नीचे रखने से गरुड़मुद्रा बनती है।
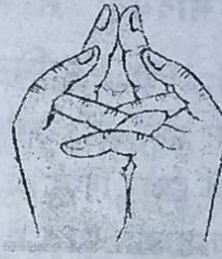
वनमाला मुद्रा योनिमुद्रा

तर्जन्यङ्गुष्ठमध्यस्था मध्यमानामिकाद्वयी।
कनिष्ठानामिकामध्ये तर्जन्यग्रकरद्वयी।।39।।
मुने श्रीवत्समुद्रेयं

तर्जनी, अंगूठा, मध्यमा और अनामिका को सटाकर तर्जनी को कनिष्ठा और अनामिका के बीच रखने से श्रीवत्समुद्रा बनती है।

वनमाला भवेत् ततः।
कनिष्ठानामिकामध्या मुष्टिरुन्नीततर्जनी।।40।।
परिभ्रान्ता शिरस्युच्चैस्तर्जनीभ्यां दिवौकसः।

इसके बाद वनमाला होती है। कनिष्ठा, अनामिका के बीच तर्जनी रखकर दोनों हाथों से मुट्ठी बाँधकर दोनों तर्जनी से देवता के हृदय का स्पर्श कर पश्चात् देवता के मस्तक पर तर्जनी को उठाकर घुमावें।

मुद्रा योनिसमाख्याता स्यात् करद्वयदर्शिता।।41।।
तर्जन्याकृष्टमध्यान्ता स्थितानामिकयुग्मका।
मध्यमूलस्थिताङ्गुष्ठा ज्ञेया शस्तार्चने मुने।।42।।

योनि नामक मुद्रा दोनों हाथों से दिखायी जाती है। दोनों मध्यमाओं के नीचे से बायीं तर्जनी के ऊपर दाहिनी अनामिका और दाहिनी तर्जनी के ऊपर बायीं अनामिका रखकर दोनों तर्जनियों से बाँधकर दोनों मध्यमाओंः को ऊपर रखने से यह मुद्रा बनती है, जो देवताओं की अर्चना में प्रशस्त है।

एताभिर्दशमुद्राभिः पूर्वोक्ताभिश्च सप्तभिः।
यो रामर्चयेन्नित्यं मोदयेत् स सुरेश्वरम्।।43।।
द्रावयेदपि[1] विप्रेन्द्र ततः प्रार्थितमाप्नुयात्।

पूर्व में कही गयी सात तथा यहाँ कही गयी दश मुद्राओं से जो नित्य श्रीराम की अर्चना करते हैं, वे देवों के ईश्वर विष्णु को प्रसन्न करते हैं, उन्हें द्रवित भी करते हैं और प्रार्थना की गयी वस्तु प्राप्त करते हैं।

लक्षणान्यासनानां हि वक्ष्यामि मुनिसत्तम।।44।।
तानि स्वस्तिकभद्राब्जवीरादीनि भवन्ति वै।

हे मुनिश्रेष्ठ! अब मैं आसनों का लक्षण कहता हूँ। आसन स्वस्तिक, भद्रासन, पद्मासन, वीरासन आदि अनेक प्रकार के होते हैं।

कृत्वौत्तानौ क्षितौ पादौ तत्रैवोरुद्वयं समम्।।45।।
निधाय निश्चलं ह्येतत् स्वस्तिकं कीर्त्यते मुने।

दोनों पैरों को पृथ्वी पर अपने सामने फैलाकर दोनों जंघाओं को समान कर अविचल होकर वैठें। यह स्वस्तिक मुद्रा कहलाती है।

(प्रयोग में बायें पैर को दायीं जंघा की मांसपेशियों के बीच तथा दायें पैर को बांयी जंघा के बीच फंसाकर स्थिर होकर बैठने से यह आसन बनता है।

पादद्वयं समं जानुद्वयोरपि तु कारितम्।।46।।
भद्रासनमिदं श्रेष्ठं जपेत् तत्तत् फलप्रदम्।

दोनों पैरों को समान रूप से दोनों घुटना के ऊपर करने से वज्रासन कहलाता है। इस श्रेष्ठ आसन में जो जप किये जाते हैं वे फलदायी होते हैं।

---

1. आचार्य रामकिशोर कृत 'मुद्राप्रकाश' नामक ग्रन्थ में 'मोदयन्ति द्रावयन्ति देवान् इति मुद्राः' यह परिभाषा दी गयी है।